वर्ष ३ | ओ३म् भक्ति ओ३म् | संख्या ७

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २) | सम्पादक— म० कृष्णानन्द, भूमानन्द | इस अङ्क का मूल्य ।)
चैत्र. १९८६

श्री श्री चैतन्यमहाप्रभु

वन्दे स्वैराद्भुतेहं तं चैतन्यं यत्प्रसादतः । यवनाः सुमनायन्ते कृष्णनाम प्रजल्पकाः ॥

Printed at the Mahaarathi Press, Delhi.

REGD. No. L. 2077

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, चैत्र पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क ७

भगवद्वचन।

य आनयत्परावतः सुनीति तुर्वशं यदुम्। इन्द्रः स नो युवा सखा॥ १॥

जो इन्द्र तुर्वश को यदु को शत्रुओं के द्वारा दूर फेंके जाने पर श्रेष्ठ नीति के द्वारा उस दूर देश से लौटा लाया, वह तरुण इन्द्र हमारा मित्र हो॥ १॥

एन्द्र सानसꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳ सदा सहम्। वर्षिष्ठमूतये भर॥ २॥

हे इन्द्र! हमारी रक्षाके निमित्त सम्यक्प्रकार भोगने योग्य समान शत्रुओं पर विजय दिलाने वाले सदा शत्रुओं का तिरस्कार करने के साधन बहुत से धनको दीजिये॥ २॥

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः॥ ३॥

बैठती हुई सब प्रजायें इन्द्र के क्रोध के निमित्त जैसे समुद्र की ओर बहने वाली नदियें समुद्र की ओर झुकती हैं तैसे ही भले प्रकार से आपही नमती चली जाती हैं॥ ३॥

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्म मूतये ॥ ४ ॥

हमारे लिये जल आदि वर्षाने वाले इन्द्र वायु आदि देवताओं को जो बड़ी रक्षा है, उसको हम लोग बचने के लिये स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः। शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ५ ॥

अविद्या विनाशक, अखण्डानन्द स्वरूप, शक्तिमान् परमात्मा हमारी प्रार्थना को सुने और मन को बोध कराने वाला हो ॥ ५ ॥

अध नो देव सविता प्रजावत्सावीः सौभगम्। परा दुष्वप्न्य ँ सुव ॥ ६ ॥

सर्वोत्पादक परमेश्वर! अब हमारे लिये सुसन्तान युक्त शोभन धन दीजिये और दारिद्र्य को दूर कीजिये ॥ ६ ॥

उपह्वरे गिरीणा ँ संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत ॥ ७ ॥

पर्वतों के प्रदेश में और नदियों के सङ्गम पर की हुई स्तुति से मेधावी इन्द्र स्तुति को सुनने को प्रकट होता है ॥ ७ ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्र ँ स्तोता नव्यं गीर्भिः नरं नृषाहं म ँ हिष्ठम् ॥ ८ ॥

मनुष्यों के अधीश्वर, स्तोत्रों करके स्तुति करने योग्य, नेता, शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, परम दाता इन्द्र की अधिक स्तुति करो ॥ ८ ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थे भिर्जरन्ते ॥ ९ ॥

हे परमेश्वर! मित्र मेधावी लोग तेरा वेद मन्त्रों से पूजन करते हैं और तुझे चाहते हुए अनन्य भक्त हम तुझे ही पूजते हैं ॥ ९ ॥

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्र मूतये ॥ १० ॥

प्रत्येक लड़ाई में प्रत्येक ऐसे योग में हम मित्र, अति बलवान् परमात्मा इन्द्र को रक्षा के लिये आह्वान करते हैं ॥ १० ॥

आत्वेत्ता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत। सखायः स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥

हे मित्रो! स्तुति का प्रवाह चलाते हुए आओ आओ, बैठो और इन्द्र परमेश्वर का कीर्त्तन करो ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु

क समय ऐसा था जब मनुष्य जीवन का ध्येय और पुरुषार्थ केवल विद्या अध्ययन कर पांडित्य लाभ करने में और तर्क द्वारा दूसरे को परास्त करने में ही समझा जाता था। शास्त्राध्ययन भी केवल तर्क के लिये ही होता था। माता पिता पुत्र को केवल विद्या (तर्क विद्या) लाभ करा देने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते थे। स्त्रियें केवल पंडित पति को प्राप्त करने में ही अपना सौभाग्योदय समझती थीं। ईश्वर भक्ति को लोग आडम्बर मानने लगे थे। जहां देखो वहीं न्याय चर्चा के अतिरिक्त दूसरी बात ही नहीं थी। ऐसे ही विकट समय में भगवान् आवश्यकतानुसार अपनी प्रतिज्ञा "धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे" के पालनार्थ या तो स्वयं जीवों को सन्मार्ग पर लगाने के लिये आते हैं या अपनी किसी विभूति को भेजते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु भी भगवान् की ऐसी ही विभूति थे जिन्होंने अपनी असाधारण दया के प्रभाव से जीवों के दुःख से दुःखित हो अनेक प्रकार के कष्ट स्वयं भोग कर नाना प्रकार का अपमान सहकर भी जबरदस्ती असंख्य जीवों को प्रेम दान देकर ईश्वर- भक्ति रूप सुधामंदाकिनी से तृप्त कर त्रिताप मुक्त किया था।

श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्म १५४१ वि० की फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमाकी रात्रि को चन्द्र ग्रहण के समय हरिध्वनि के बीच नवद्वीप (नदिया)में हुवा था। इनके पिताका नाम पं० जगन्नाथ मिश्र और माताका शचिदेवी था। शचिदेवी ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध ज्ञाता पं० निलाम्बर चक्रवर्ती की कन्या थी। चैतन्यमहाप्रभु तेरह महीने माता के गर्भमें रहे, इससे पं० जगन्नाथ मिश्रने चिंतातुर हो अपने श्वसुर निलाम्बर चक्रवर्ती को बुलाया। उन्होंने गणना करके बताया कि शीघ्र ही कोई महापुरुष इसके गर्भ से प्रकट होंगे। चैतन्य महाप्रभु के पूर्व शचि देवी के आठ कन्यायें और एक पुत्र हुआ जिनमें कन्यायें तो कोईभी जीवित न रहीं। पुत्र का नाम विश्वरूप रखा गया। चैतन्य महाप्रभु का नाम विश्वम्भर रखा गया था कोई इन्हें निमाई भी कहा करते थे। उपनयन संस्कार के समय इनका नाम गौरहरि रखा गया था। बालकपन में जब विश्वम्भर रोया करते तब हरिनाम सुनते ही चुप हो जाते। उनको चुप करने की एक मात्र ओषध हरिनाम ही थी।

कुछ बड़े होने पर जब ये पाठशाला में भेजे गये तब अपनी बुद्धि और स्मरण शक्ति का अच्छा परिचय दिया और थोड़े ही दिनों में पाठशाला की पढाई समाप्त कर संस्कृत पढना आरम्भ कर दिया। विश्वरूप की योग्यवय देख जगन्नाथ मिश्र ने उनके विवाह की चर्चा चलाई। लेकिन बालपन से ही विषयों से विरक्त रहने वाले विश्वरूप इसकी खबर पाते ही घर छोड़ संन्यास धारण कर बाहर निकल गये। पुत्र वियोगसे माता पिता बड़े विकल हुये किन्तु निमाई का चांद सा मुंह देख कर किसी प्रकार धीरज धारण किया।

इस समय विश्वम्भर ने सारी चंचलता छोड़ दी और गंगादास की टोल में व्याकरणाभ्यास करने

लगे। अपनी बुद्धि के प्रभाव से यहां भी ये शिघ्र ही सर्व प्रधान छात्र गिने जाने लगे। इसी समय व्याकरण पर इन्होंने एक टिप्पणी बनाई जिसका नवद्वीप के विद्वज्जन समाज में बड़ा आदर हुवा और उसका बंगाल में अच्छा प्रचार हुवा। बारह वर्ष की उम्र में ही इन्हें पिता का दुस्सहनीय वियोग सहना पड़ा। इसके बाद वे वासुदेव सार्वभौम की पाठशाला में न्याय पढ़ने लगे और थोड़े ही समय में इतने विलक्षण पंडित होगये कि इन की निपुणता के आगे सबको सिर झुकाना पड़ा।

युवा अवस्था प्राप्त होने पर माता को इनके विवाह की चिन्ता हुई लेकिन विश्वरूप की घटना के याद आते ही यह प्रस्ताव सन्मुख रखने की हिम्मत ही न हुई। निमाई ने माता का अभिप्राय जान उन्हें दुःखित देख स्वयं ही विवाह करने की अभिलाषा प्रकट की और नदिया के वल्लभाचार्य नामक ब्राह्मण की लक्ष्मी नामक कन्या से इनका विवाह होगया।

निमाई इस समय विद्याभ्यास तो प्रायः खतम ही कर चुके थे और सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक अपनी अलग पाठशाला मुकुन्द संजय के चण्डी मण्डप में स्थापन कर वहां विद्यार्थियों को संस्कृत का अभ्यास कराने लगे। पण्डितों में इनकी अच्छी प्रसिद्धि होचुकी थी। नवद्वीप न्याय का केन्द्र समझा जाता था। इसी समय एक केशव काश्मीरी नामक दिग्विजयी पंडित नदिया में आये जिन्हें देख सारी पण्डित मण्डली घबरागई और किसी को उनसे शास्त्रार्थ करने का साहस न हुवा। चैतन्य महाप्रभु गंगा किनारे अपने छात्रों सहित बैठे हुये थे उसी समय वे दिग्विजयी पंडित भी अपनी टोली सहित वहीं पधारे। निमाई पंडित के कहने पर दिग्विजयी पंडित ने श्री गंगाजी का एक स्वरचित स्तवन और उसकी व्याख्या सुनाई। निमाई ने युक्ति सहित उस व्याख्या के कई दोष बताये। इससे सहज ही में दिग्विजयी पंडित परास्त हो अपनी विजय की कुल सम्पत्ति छोड़ वहां से नो दो ग्यारह होगये। इस घटना से सारे नगर में निमाई की बड़ी ख्याति फैल गई लेकिन निमाई को अपने पांडित्य का जरा भी अभिमान न हुवा।

इन्होंने न्याय शास्त्र पर एक टीका लिखी थी और उसी समय मिथिला के रघुनाथ भी न्याय पर अपना प्रसिद्ध 'दाधिति' ग्रंथ लिख रहे थे। दोनों एक समय गंगा में गंगा जी की सैर कर रहे थे उस समय रघुनाथ ने निमाई की न्याय पर लिखी हुई टीका देखी। देखते ही उसका मुख सूख गया। अपने 'दाधिति" ग्रंथ से उसे जो प्रतिष्ठा पाने की आशा थी वह निमाई रचित इस ग्रंथ को देख कर धूल में मिल गई। निमाई को यह जान कर बड़ी दया आई और अपनी असाधारण उदारता के कारण अपने उस अमूल्य ग्रंथ रत्न को गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। उसी समय से उन्होंने न्याय चर्चा का भी त्याग कर दिया।

निमाई की प्रवृत्ति भक्तिमार्ग की तरफ प्रारम्भ से ही देखने मे आती थी। वे बचपन में प्रायः श्रीमद्भागवत् जैसे भक्ति विषयक ग्रंथ रत्नों का अध्ययन किया करते थे। एक दिन अपने शिष्यों सहित निमाई जारहे थे कि रास्तेमें मुकुन्ददत्त नामक सहपाठी से भेट हो गई। मुकुन्ददत्त इन्हें हरि भक्ति से दूर समझा करते थे इसलिये इनसे व्यर्थकी वार्तालाप में समय काटना बुरा समझा। वे सोचते थे कि भक्तों के सिवाय दूसरों से बात करने में जो समय

जायगा वह हरि चर्चा विहीन व्यर्थ ही जायगा। इसी से वे आंख बचा कर जाने लगे यह देख निमाई बोले, "मुकुन्द ! मैं भी ऐसा वैष्णव बनूंगा कि आज जो मुझे देख कर दूर भागते हैं उन्हें ही मेरा गुण गाना होगा"। इसी समय से निमाई वैष्णव धर्म का आचरण करने लगे।

ईश्वरपुरी नामक एक परम भागवत् संन्यासी भी इसी समय नवद्वीप में श्रीवासके घर आकर ठहरे थे। श्रीवास परम भक्त थे। वे अपने घर पर जोर जोर से हरि कीर्तन करने में और सत्संग में ही ज्यादा समय बिताया करते थे। यहां ईश्वरपुरी से निमाई भी मिले। ईश्वरपुरी ने "श्रीकृष्ण लीलामृत" नामक स्वरचित ग्रंथ निमाई को पढ़ने को दिया इसी समय से उनके हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम का अंकुर दिखाई देने लगा।

प्रायः उन्नीस वर्ष की अवस्था में निमाई पूर्व बंगाल की यात्रा करने गये। जब लौट कर आये तब उन्हें मालूम हुवा कि उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी की मृत्यु सांप काटने से हो गई इससे माता को उदास देख बोले "कस्य के पति पुत्रादिमोह एव ही केवलम्"। इस तरह माता को धीरज देकर शांत किया। माता के अनुरोध से निमाई ने नवद्वीप के मिश्र की कन्या विष्णुप्रिया से द्वितीय विवाह कर लिया।

निमाई ने विवाह के कुछ समय उपरान्त लगभग २१ वर्ष की अवस्था में पितृऋण परि शोधार्थ गया जाने के लिये माता से आज्ञा मांगी और अपने कुछ शिष्योंको साथ ले, गयाके लिये प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर विष्णुपद के मंदिर में ब्राह्मणों द्वारा की हुई भगवान् की पूजा, स्तुति, वन्दना आदि देख कर मोहित हो गये। वहीं पूर्व परिचित ईश्वरपुरी सन्यासी से पुनः भेट हुई। निमाई ने इन से मंत्र ग्रहण किया। इसी समय से इनका जीवन बदल गया। हृदय स्थित भक्ति बन्ध टूटने लगा। श्रीभगवत् प्रेम बहुत ही बढ़ गया। प्रेम में अस्थिर हो मूर्छित हो गये। इस अद्भुत परिवर्तन को लेकर चैतन्य महाप्रभु घर लौटे यह स्थिति देखकर शिष्यों के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा।

नवद्वीप के लोग इतने बड़े पंडित को ऐसी दशा देख कर बड़े आश्चर्यान्वित हुये। गया का वृत्तान्त पूछने पर कहते कहते निमाई का गला भर आता। मूर्छित हो गिर पड़ते। धीरे धीरे घर का काम काज सारा छूटगया, रात दिन हरिनाम कीर्तन में लगे रहने से समय समय पर प्रेमावेश भी होने लगा। श्रीवास के घर पर नित्य हरि चर्चा होने लगी। अवधूत नित्यानंदजी, अद्वैताचार्य, गदाधर, मुरारि, मुकुन्द, नरहरि पुरुषोत्तम, पुण्डरीक, विद्यानिधि, गंगादास, दामोदर, गोविंद, वासु घोष, वक्रेश्वर, चन्द्रशेखर, आदि सैंकड़ों भक्त श्रीवास के घर पर आकर श्रीकृष्ण संकीर्तन में सम्मिलित होने लगे। कहा जाता है कि कीर्तन के बीच में कई बार चैतन्य महाप्रभु को भगवान् का आवेश भी होता था और उसी आवेश में उन्होंने एक बार भक्त मंडली को चतुर्भुज और षड्भुज रूप दिखलाया था। इधर तो ये लीला हुवा करती उधर विरोधी दल वाले, इनके कार्य में बाधा पहुंचाने की चेष्टा किया करते थे।

उसी समय वहां पर शक्ति की उपासना का बहुत जोर था। शक्ति की उपासना की आड़ में तरह तरह के अनाचार होने लगे थे। ऐसे अवसर में निमाई की शुद्ध हरि चर्चा लोगों को क्यों भाने

लगी ? वहां के ब्राह्मण कोतवाल के पुत्र जगन्नाथ और माधव दो भाई घोर शाक्त थे। ऐसा कोई पाप न था जो वे न करते थे। इनके अत्याचारों से पीड़ित होकर सारा नवद्वीप डरता था। भक्त मंडली का हरि कीर्त्तन इन दोनों भाइयों के हृदयमें कांटा सा चुभने लगा और किसी तरह इनको वे अपना पराक्रम दिखा कर कीर्तन बंद करना चाहते थे। पापकी दो मूर्तियों को देख कर नित्यानंद जी के मन में स्वाभाविक दया का स्रोत उमड़ आया। उनकी इच्छा हुई कि जिस तरह ये दोनों भाई सुरापान में रहते हैं उसी तरह अगर ये हरिनाम सुधापान में लग जांय तो क्या ही अच्छा हो ? इस उद्देश से नित्यानन्द जी उनके घर हरिनाम देने गये और हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक बहुतेरा समझाया। लेकिन वे दुराचारी कब मानने वाले थे उन्होंने नित्यानंदजी को फटकार कर निकाल दिया। नित्यानंदजी अपनी मंडली में चले आये और माधव चैतन्यदेव से प्रार्थना करने लगे "प्रभु! पहिले सबसे अधिक पापी जगन्नाथ और माधव हैं उनका उद्धार करने में ही आपके अवतार की सार्थकता है। महाप्रभु ने भक्त मंडली को एकत्र कर नगर कीर्तन की तैय्यारी की। लाखों मनुष्य एकत्रित होगये। कितने ही तमाशा देखने वालेभी मंडली में सम्मिलित हो गये। ढोल, करताल और मृदङ्ग बजने लगे। हरि कीर्तन की तुमुल ध्वनि से दशों दिशायें गूंज उठी। भक्त मंडली निर्भय हो कीर्तन करती हुई जगन्नाथ और माधव के मकान पर पहुंची। नित्यानन्द जी तो उत्साह से भरे हुये निर्भय हो सबसे आगे चलते ही थे। दुष्टों ने कीर्त्तन दल पर एक फूटे हुए घड़े के टुकड़े से आक्रमण किया जो नित्यानन्द जी के मस्तक में लगा जिसकी चोट से मस्तक में गहरा घाव हो गया और रक्त धारा बहने लगी। नित्यानन्द जी प्रेम दशा में इस चोट की कुछ भी परवाह न करते हुए नम्र हो प्रार्थना करने लगे और बोले "भाई जगन्नाथ और माधव! तुमने हमें मारा सो तो अच्छा किया एकबार तो हरि हरि बोलो"। इधर नित्यानन्दजी माधवको आलिंगन करना चाहते थे और उधर माधव उनको मारने को उद्यत हुवा इसी समय जगन्नाथ का भाव पलट गया और उसने अपने भाई माधव का हाथ पकड़ लिया। चैतन्य महाप्रभु यह समाचार मिलते ही तुरंत वहां आगये और नित्यानंद के मस्तक में रक्त धारा बहती देख क्रोध कर उन्हें दण्ड देने को तैयार हो गये। नित्यानंदजी की विनय से महाप्रभु का क्रोध शान्त होगया। क्रोध था ही कैसा ? उन्हें तो जगन्नाथ और माधव को दिखाना ही था कि जिसे तुम मारते हो वही तुम्हें बचाने का प्रयत्न करता है। महाप्रभु और नित्यानंद जी के ऐसे प्रेम और दयालुता को देखकर उन दोनोंका पाप कलुषित हृदय तत्काल शुद्ध हो गया और दोनों भाई चरणों में पड़ क्षमा प्रार्थना करने लगे। दोनोंका पापमय जीवन पश्चात्ताप की अग्नि से शुद्ध होकर प्रेम और पुण्यमय हो गया। हरिनाम के प्रभाव से दोनों ने परम वैष्णव बन कर जीवन का फल पाया।

इस घटना से महाप्रभु का प्रभाव बढ़ता देख कई मनुष्य द्वेष वश हो चांदसां काजी को उल्टी सीधी सुना बहकाने लगे। महाप्रभु को जब यह समाचार मिला तो फिर नगर कीर्त्तन की तैयारी की नगरकीर्त्तन रोकने को सेना भेजी लेकिन कीर्त्तन ध्वनि कानों में पड़ते ही सेना पर भी जादू का सा असर हुवा और वे सब भी उसी तरह मत्त होकर

नाचते हुये कीर्त्तन दल में मिल गये। यह देख काजी घबराया और मकान के अंदर जाकर छिप गया। कीर्तन दल नजदीक पहुंच गया तब तो काजी और कोई उपाय न देख कर महाप्रभु के चरणों में पड़ क्षमा याचना करने लगा। महाप्रभु का विधान 'दंड विधान' तो था ही नहीं फिर क्षमा किस बात की? उसे भी हरिनाम मंत्र उच्चारण करने का आदेश देकर विदा किया और उसी दिन से चांदखां काजी भी पूरा श्रीकृष्ण भक्त होगया।

इस समय निमाई की अवस्था चौबीस वर्ष की होगई थी! इनके वैष्णव होने पर पण्डित मंडली भी इनकी विरोधी होगई। कृष्ण प्रेम में निमाई की आखों से पानी के फव्वारे छुटा करते थे। रात्रि को आंसुओं की झड़ी से तोशक और बिस्तर भीज कर तर हो जाते। इनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार सभी जीव श्रीकृष्ण प्रेम में उन्मत्त हो, उनका गुणगान कर अपने जीवन को सफल करें। लेकिन उनके इस आदेश को मानने वाले बहुत ही थोड़े थे। महाप्रभु ने विचार किया कि जब तक मैं ऐश आराम से रहूंगा तब तक किसी पर भी मेरा प्रभाव पड़ना कठिन है। इसीलिये जीवों के दुःख से कातर हो महाप्रभु ने संन्यास लेने का निश्चय कर लिया। लेकिन इसके लिये उन्होंने माता और स्त्री की भी सम्मति लेनी उचित समझी। सुअवसर देख कर एक दिन उन्होंने माता से संन्यास लेने की आज्ञा मांगी माता को सुन कर अपार कष्ट हुआ लेकिन पुत्र प्रेम के कारण बाध्य हो अनुमति देनी पड़ी। विष्णुप्रिया को सारी बात मालूम हो ही गई थीं। रात्रि को डरते डरते कांपते हुये शयन गृह में प्रवेश किया। विष्णुप्रिया महाप्रभु को देखते ही फूट फूट कर रोने लगी। येन केन पुकारेण महाप्रभु ने उसे धीरज बंधाया और अपना सारा उद्देश्य विस्तार पूर्वक कह कर इस कार्य में उसकी भी अनुमति मांगी। विष्णुप्रिया बोली "नाथ! मुझे अपने लिये कोई दुःख नहीं है, दुःख है तो केवल इसी बात का, कि आपके वियोग में वृद्धा माता किसी प्रकार भी प्राण धारण करने में समर्थ न होगी। इसपे लोग आपकी निन्दा करेंगे आपको निष्ठुर बतायेंगे मैं आपका यह अपमान किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकती"। महाप्रभु बोले, "प्रिये! मेरे वस की बात नहीं है, जब जब मैं यहां रहने का विचार करता हूं तब तब कोई अज्ञात शक्ति जबरदस्ती मुझे खींचती है। जीवों के दुःख से मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। प्रिये! घबराओ नहीं, धैर्य धारण करो, पीछे से माता की सेवा कर मेरा वियोग भूला दो और मुझे सहर्ष अनुमति दो"। इस प्रकार स्त्री की भी अनुमति लेली। विष्णुप्रिया बोली "अच्छा नाथ! जैसी आपकी इच्छा! मैं तो आपके सुख से सुखी हूं। मुझे चाहे कितना ही कष्ट हो लेकिन यदि संन्यास लेने से आपका जीवों के लिये जो दुःख है वह कम हो तो आप सहर्ष ऐसा कीजिये"। दोनों की अनुमति लेने के बाद महाप्रभु घर में ऐसे आसक्त से हो गये मानों आप संन्यास लेंगे ही नहीं। पश्चात् अचानक एक रात्रि को विष्णु प्रिया को अकेली सोती छोड़ निमाई घर से निकल गये। रात्रि को ही दारुण शीतकाल के समय गंगा को तैर कर करवा में एक परम भागवत् केशव भारती नामक संन्यासी से दीक्षा लेने को पहुंचे।

विष्णुप्रिया पति विहीन शून्य घर में चमक कर उठी और पति को न देख कर रुदन करने लगी। माता शचिदेवी अचानक रुदन सुन कर घबड़ाई हुई आई

और निमाई के जाने का हाल सुन कर विष्णुप्रिया की भांति विलाप करने लगी। प्रातःकाल होते ही यह खबर सारे नगर में आग की तरह फैल गई। भक्तगण अधीर हो प्रभु को लौटा लाने के लिये जाने को उद्यत हुये। श्रीवास ने सबको समझाया कि यदि सभी चले जायंगे तो पीछे से दुःखी माता और विष्णुप्रिया को कौन सांत्वना देकर उनकी रक्षा करेगा। इसलिये यह तह हुवा कि निताई (नित्यानंदजी) वक्रेश्वर, मुकुन्द, चंद्रशेखर और दामोदर ये पांच भक्त प्रभु को लौटालाने को जांय। लेकिन पीछे से दो एक और भी भक्त प्रभु का विरह सहने में असमर्थ हो भाग गये। कटवा में निमाई को संन्यास दीक्षा लेते देख ग्राम के नर नारी सभी आने जाने वाले वहीं ठहर गये! केशव भारती को भी प्रभु की मोहनी मूर्ति देख कर मोह हो आया और संन्यास दीक्षा देने से इन्कार करने लगे। नाई भी क्षौर कर्म करने में आना कानी करने लगा। स्त्रियें और पुरुष सभी कातर हो निमाई को घर लौटने के लिये अनुरोध करने लगे। इतने में भक्तगण भी आ पहुंचे। अन्त में प्रभु की करुणायुक्त वाणी से सभी उनके प्रभाव में आगये और जैसे उन्होंने आज्ञा दी, वैसा ही किया। भक्तगण जो प्रभु को लौटा ले जाने को आये थे वे ही संन्यास दीक्षा ग्रहण कराने में सहायक हुये। नवीन संन्यासी का नाम रक्खा गया "श्रीकृष्ण चैतन्य"। उसी समय से लोग उन्हें श्रीकृष्ण चैतन्य या चैतन्य महाप्रभु कहने लगे।

अपूर्ण

पुण्य स्मृति।

[ले० श्री० पं० रमाशंकर जी मिश्र

हैं लतायें द्रुम कहां जिन पर विहंग थे बोलते। कुंज वे मधुकर जहां थे मुग्ध होकर डोलते।
कालिंदी के कूल वे व्रज-वीथियां मुद कारिणी। केलि श्यामा श्याम की वे गोपियां मन-हारिणी॥ १
तान वंशी की सुरीली और वे मधुवन अहो। लूटना माखन, चराना धेनु वन में वहकहो।
मंदिरों में जो हुआ करता निराला नृत्य था। बाल-लीला का कहो, कैसा मधुर वह दृश्य था॥ २
प्रेम से परिपूर्ण वह अब प्रणय प्यारा क्या हुआ। लाड़िली संग झूलने का सौख्य सारा क्या हुआ।
चन्द्रिका में रासमण्डल की घटा कब छायगी। चिन्तिता व्रज-भूमि माधव! क्या न अब मन भायगी॥

भगवद्भक्ति

धर्माधर्म विधातारं धर्माधर्म विवर्जितम्
देवं शाश्वत मीशानं भजामि वेद वंदितम्

धर्म निष्ठा

छप्पय

वेद विहित जे कर्म धर्म ते ही कहलावत ।
भगवत् वाणी वेद, श्रेय कर मार्ग दिखावत ॥
जे पालत निज धर्म, लोक परलोक बनावत ।
करि हरि भक्ति अनन्य अंत पद निश्चलपावत ॥
भोला ! सीधे मार्ग चल, खोटा रस्ता त्यागरे ।
धर्म कर्म भज राज तज, हरि पद करि अनुरागरे

सारामः-हे भगवन् ! मैंने आपके समान धीर पुरुषों से ऐसा सुना है कि जो स्त्री पुरुष सदाचारी और धर्म निष्ठ होते हैं, वे ही भक्ति के अधिकारी हैं, उन्हीं पर भगवत् शीघ्र अनुग्रह करते हैं कृपा करके शिष्ट पुरुषों का आचार किस प्रकार का होता है और मनुष्य का धर्म क्या है, यह बात आज सुनाइये !

मस्तरामः—हे मंसाराम ! यह बात एक बार युधिष्ठिर ने भीष्मजी से पूछी थी, मैं उन दोनों का संवाद तुझे सुनाता हूं, ध्यान देकर सुन, एक दिन युधिष्ठिर ने नम्र होकर गंगा पुत्र भीष्म से कहाः—

युधिष्ठरः—हे पितामह ! सब वर्णों का क्या धर्म है ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों का भिन्न२ धर्म क्या है ? श्रेष्ठ पुरुषों का आचार क्या है ?

भीष्मः-हे राजन् ! मैं जगत् के उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण और ब्राह्मणों को प्रणाम करके सनातन धर्म कहता हूं, सुन, क्रोध न करना, सत्य बोलना, अन्नादि का ठीक २ विभाग करना. क्षमा, अपनी स्त्रियों में संतति उत्पन्न करनी, पवित्र रहना, किसी से द्रोह न करना, सरल स्वभाव वाला होना, जिनके भरण पोषण का भार अपने ऊपर हो, उनका भरण पोषण करना ये नव धर्म तो चारों वर्णों को धारण करने चाहियें। अब केवल ब्राह्मणों का धर्म कहता हूं, सुन, ब्राह्मण का मुख्य धर्म इंद्रिय दमन है और और दूसरा धर्म वेदाध्ययन है, नैष्ठिक ब्राह्मण वेदाध्ययन से ही कृतार्थ होता है, दुष्कर्म न करने वाले, अपने कर्म में वर्तने वाले, प्रज्ञान रूप आनन्द में तृप्त रहने वाले शान्त ब्राह्मण को यदि अनायास से धन की प्राप्ति हो जाय तो उसको विवाह करके प्रजा उत्पन्न करनी चाहिये, ब्राह्मण को वेदाध्ययन करके, दान देकर, यज्ञ करके और अन्नादि तथा धन का विभाग करके पीछे भोजन करना चाहिये, ऐसा शिष्ट पुरुष कहते हैं। जब ब्राह्मण अपने अध्ययन कर्म से निवृत्त हो जाय तब वह दूसरा कृत्य करे अथवा न भी करे क्योंकि ब्राह्मण इस जगत् का मित्र-देव कहलाता है। मित्र का अर्थ सूर्य है- जैसे सूर्य सर्व व्यवहार का प्रकाशक है इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म का प्रकाशक है। हे राजन् ! अब क्षत्रिय का धर्म कहता हूं सुन, क्षत्रिय को दान देना चाहिये,

दान लेना योग्य नहीं हैं, यज्ञ करना चाहिये, यज्ञ कराना उचित नहीं है, विद्या पढ़नी चाहिये, पढ़ाना न चाहिये प्रजा का पालन करना, चोर और डाकुओं को दंड देना, सदा उद्योगी रहना और संग्राम में पराक्रम दिखलाना क्षत्रिय का धर्म है। जो क्षत्रिय यज्ञ करके यजन करते हैं, जो वेद पढ़े हुये हैं, जो संग्राम में जय प्राप्त करते हैं, वे क्षत्रिय ही जगत् में सर्वोत्तम हैं। शरीर पर घाव लगे बिना जो क्षत्रिय संग्राम में से लौट आता है, उसकी पंडित कीर्त्ति नहीं गाते। चोरों को दंड देने से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम कृत्य क्षत्रिय का नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीन कर्म करने से राजा का कल्याण होता है। इसलिये धर्म की इच्छा करने वाले राजा को विशेष करके धर्म युद्ध करना चाहिये, धर्म युद्ध ही राजा का मुख्य यज्ञ है। राजा को अपनी प्रजा को अपने २ धर्म में स्थापन करना चाहिये। जब क्षत्रिय प्रजा पालन रूप कर्म से निवृत्त हो तब दूसरा कार्य करे अथवा न भी करे क्योंकि क्षत्रिय इन्द्रदेव कहलाता है। इन्द्र हाथों का देवता है इसी प्रकार राजा का मुख्य धर्म रक्षा करना है।

अब वैश्य का सनातन धर्म कहता हूं, सुन, दान करना, अध्ययन करना, यज्ञ करना, पवित्र रीति से धन का संचय करना वैश्य का धर्म है। वैश्य को उद्योगी होकर पशुओं को पालना चाहिये और पिता के समान उसकी संभाल करनी चाहिये, उसके सिवाय यदि वह दूसरा कर्म करे तो उसे विकर्म कहना चाहिये। वैश्य पशुओं का पालन करने से महान् सुख प्राप्त करता है क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि को निर्माण करके पशु वैश्य को दिये हैं और अन्य प्रजा ब्राह्मण और क्षत्रियों को दी है। वैश्य की जीविका कहता हूं, सुन, यदि वैश्य छै: गाय पाले तो एक गाय का दूध अपने निर्वाह के लिये लेवे, सौ गाय पालने वाला वैश्य एक बैल की जोट यानी दो बैल रक्खे व्यापार में जो लाभ हो, उसमें सातवां भाग अपने निर्वाह के लिये लेवे। इसी प्रकार सींग वाले, खुरवाले पशु और कारीगरी के कार्यों में से भी जो लाभ हो, उसमें से सातवां भाग लेवे। घास दाने आदि में से भी सातवां भाग लेवे और घास तथा दाना वार्षिक संग्रह करे। वैश्य को यह इच्छा न करनी चाहिये कि मुझे पशु पालने नहीं हैं और जब तक वैश्य पशु रखने की इच्छा करे तब तक दूसरों को पशु रखना उचित नहीं है। अब शूद्रों का धर्म सुन, ब्रह्मदेव ने शूद्र को प्रजा का दास कल्पा है इस लिये शूद्र को तीनों वर्ण की सेवा करनी चाहिये। तीनों वर्ण की सेवा करने से ही शूद्र महान् सुख पाता है। शूद्र को अनुक्रम से तीनों वर्णों की सेवा करनी चाहिये और किसी दिन भी संचय करना न चाहिये। जो शूद्र अपने से उत्तम वर्ण का धन लेकर स्वाधीन में रखता है, उसको चोरी जानना, धर्मी शूद्र को राजा की आज्ञा दिये स्थान में निवास करना चाहिये शूद्र की वृत्ति और उपजीविका कहता हूं सुन, तीनों वर्णों की प्रजा का शूद्र को अवश्य पोषण करना चाहिये। शूद्र सेवा करने की इच्छा से जिसके पास आवे, उसको स्वयं ही शूद्र की वृत्ति कल्पनी चाहिये क्योंकि धर्म के जानने वालों ने उसकी निराली वृत्ति कहीं नहीं कल्पी है, बिना पुत्र वाले शूद्र को भोजन देना और दुर्बल शूद्र का पोषण करना चाहिये जो यज्ञ तीनों वर्णों के करने का है, वह ही शूद्र को करना चाहिये, मात्र स्वाहा और वषट्कार

आदि का उच्चारण करना और वेद मंत्र बोलना न चाहिये यानी मंत्र बिना शूद्र को यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ किये बिना भी शूद्र को यज्ञ का फल मिलता है क्योंकि शूद्र सबका सेवक है तो स्वामी के किये हुये यज्ञ के फल का भाग उसको भी मिलता ही है। हे राजन्! यहां तक मैंने तुझ से मनुष्य के साधारण धर्म और प्रत्येक वर्ण के भिन्न २ धर्म दिग्दर्शन मात्र कहे, अब शिष्टाचार कहता हूं, सुन, प्रभात का उठना, स्नान करना, माता पिता, गुरु की वन्दना, सत्य बोलना, सुहृदता, मीठे वचन, विवेकी जनों का संग, विद्या पढना, किसी को बुरा न कहना, जिसका लवण खाना, उसकी निश्छल होकर सच्चे मन से सेवा करना, मित्र से कपट न करना, जो कोई विद्या सिखावे, भगवद्भक्ति में लगावे, उसको गुरु जानना, भवद्जन इत्यादि शिष्ट पुरुषों का आचार है। झूंठ बोलना, चोरी करना, पर स्त्रीगमन, हिंसा, जुवा खेलना, मद्य पीना, असाधु जनों का संग, मिथ्या उत्पात उठाना, कपट करना, मूर्खता अकृतज्ञता, इत्यादि त्यागने योग्य हैं। नदी मे स्नान करने में, पानी बरसने में, चलते हुये और क्षौर कराते हुये दूसरी ओर चित्त न देना, बासी, गरिष्ठ, झूंठा, तीक्ष्ण, खट्टा, तथा क्षार इत्यादिक न खाना, चिकना स्वादिष्ट, मिष्ट आहार का भोजन करना, रात को पहाड़ पर न चढना, इत्यादि शिष्टाचार ग्रहण करने योग्य हैं।

मस्तराम:- हे मंसाराम! ये जो सब वर्णों के साधारण और असाधारण कर्म बताये और इनके सिवाय जो वेद विहित कर्म हैं, उनका और वेद निषिद्ध कर्मों का न करना धर्म है। अपने २ वर्ण के कर्म करना ईश्वर की भक्ति है, गीता में कहा है:--

यतः प्रवृत्ति र्भूतानां येन सर्वं मिदं ततम्
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः

अर्थः - जिस ईश्वर से आकाशादि भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिस ईश्वर ने इस सब विश्व को व्याप्त कर रक्खा है, उस ईश्वर को अपने कर्म से सन्तुष्ट करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रुति में कहा है:-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि,
जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतो—
ऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थः-यहां सौ वर्ष तक कर्म करते हुये ही जीने की इच्छा करनी चाहिये, इसके सिवाय तेरे लिये दूसरा मार्ग नहीं है, ऐसा करने से मनुष्य कर्म से लिप्त नहीं होता। हे मंसाराम! वेद में बताये शुभ कर्मों का आचरण और अशुभ कर्मों का त्याग अवश्य करना चाहिये। जो कोई वेद की आज्ञा से विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरक-गामी होकर अति कठिन यम यातना का दुःख भोगते हैं और चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने का ऐसा कठिन दंड है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि नरक में से उद्धार होने का तो समय नियत है और जन्म मरण आवागमन से छूटने का कोई समय ही नियत नहीं है। आवागमन घट यंत्र के समान ऊपर नीचे चलता ही रहता है। संयोग वश बड़े पुण्य से मनुष्य शरीर प्राप्त होता है, मनुष्य शरीर संसार से तरने के लिये नौका के समान है, यदि मनुष्य शरीर प्राप्त करके संसार से छूटने का उपाय कर लिया तब तो

बेड़ा पार है नहीं तो फिर उसी दुःख में पड़ना पड़ता है। कर्मशास्त्र की आज्ञा का अनुसरण करना सीढी के समान है। जैसे सीढी द्वारा मनुष्य ऊंचे से ऊंचे महल पर सहज में ही चढ जाता है उसी प्रकार कर्म करने से मनुष्य परिश्रम रहित ही उत्तम पद प्राप्त कर लेता है। जो लोग कर्म नहीं करते उनका उद्धार होना बहुत कठिन है। कोई २ मनुष्य ऐसे देखने में आते हैं कि उनकी कर्म करने में प्रीति नहीं है और उत्तम पद प्राप्त करना तो चाहते ही हैं ऐसे लोग कभी भी सिद्धपद को पहुँचने वाले नहीं हैं, विचारना चाहिये कि जब भगवन् स्वयं वेदाज्ञा और कर्म शास्त्र के प्रकाश और प्रवृत्ति के निमित्त अवतार धारण करते हैं तो दूसरों को कर्म क्यों नहीं करना चाहिये। जब भगवन् ने आप अपने को कर्म करने से निवृत्त नहीं किया है तो दूसरा बिना कर्म किये उद्धार चाहे तो कैसे हो सकता है गीता में भगवान् का वचन है। "कि मैं आप कर्म करता हूं, यदि मैं कर्म न करूं तो दूसरे लोग भी कर्म छोड़ दें तो मैं ही जगत् का नाश करने वाला होऊं"। रावण का वध करने के बाद जब श्री रघुनाथजीको मालूम हुआ कि रावण का जन्म ब्राह्मण वंश में था तो उन्होंने पाप दूर करने के निमित्त अश्वमेध यज्ञ किया और कर्मशास्त्र की मर्यादा से पैर बाहर नहीं रक्खा तो साधारण मनुष्य की बात ही क्या है कि बिना कर्म किये संसार समुद्र से पार हो जाय!

मंसारामः-महाराज! कर्म तो आप जड़ है, जड़ कर्म चैतन्य मनुष्य को कैसे मुक्त कर सकता है?

मस्तरामः-भाई! नौका जड़ है, फिर भी मल्लाह के सहारे से सैंकड़ों को पार पहुंचा देती है!

मंसारामः-महाराज! नौका को चलाने वाला तो चैतन्य मल्लाह है, कर्म को चलाने वाला कौन है? चलाने वाला चैतन्य होना चाहिये, जड़ वस्तु दूसरे चैतन्य को पार नहीं कर सकती।

मस्तराम! भाई प्रथम तो कर्मों का नियामक ईश्वर है इसलिये जड़ कर्म ईश्वर के सहारे से संसार समुद्र से पार कर देते हैं। दूसरे सर्वदा यह नियम भी नहीं है कि चैतन्य ही पार करता हो, सीढी जड़ है, बिना सीढी के कोई भी प्राणी ऊपर नहीं चढ सकता इसी प्रकार कर्म बिना कोई संसार समुद्र से पार नहीं हो सकता, कर्म ही संसार समुद्र से पार करने में सहायक होते हैं और उत्तम पद पर पहुंचा देते हैं।

मंसारामः-महाराज! यदि शुभ कर्म किये जायंगे तो उन के भोगने के लिये अवश्य शरीर धारण करना पड़ेगा, जब शरीर धारण किया जायगा तो एक दिन मृत्यु का ग्रास भी होना पड़ेगा, यों तो जन्म मरण का चक्र छुटेगा ही नहीं क्योंकि जब तक कर्म होता रहेगा, शरीर होता रहेगा और जब तक शरीर होता रहेगा, मृत्यु भी होती रहेगी! फिर कर्म करने से कैसे छुट सकते हैं?

मस्तरामः-भाई! कर्म दो प्रकार के हैं, एक सकाम, जो किसी कामना की सिद्धि के निमित्त किये जाते हैं, ये कर्म अवश्य बंधन करने वाले हैं क्योंकि जब २ इन कर्मों का फल समाप्त होगा तब २ स्वर्गादि से पृथ्वी पर आना पड़ेगा! दूसरे निष्काम कर्म हैं, ये बंधन के कारण नहीं हैं, किंतु उद्धार करने वाले हैं, निष्काम कर्म का अर्थ यह है कि जो कर्म करे, कामना रहित करे, किसी प्रकार का फल न चाहे जो कर्म करे भगवत् के अर्पण कर दे! भगवन् अच्युत अनंत और अविनाशी है इसलिये जो फल

भगवत् को अर्पण किया जायगा, वह भी अच्युत, अनन्त और अविनाशी हो जायगा और उसी से प्रसन्न होकर भगवत् अपना स्वरूप भक्त के हृदय में प्रकाशित कर देंगे यानी भगवत् चरणों में प्रीति हो जायगी और भगवत् चरणों में प्रीति होते ही बेड़ा पार है, भगवत् उसे आप अपना बना लेंगे! लोक में भी रिवाज है कि जब कोई कंगाल मनुष्य महाराजा आदि की सेवा में दो चार पैसे की कोई वस्तु ले जाता है तो महाराजा आदि उस वस्तु का मोल नहीं देखते और मनुष्य की योग्यता भी नहीं देखते किंतु अपनी ओर देख कर उसको इतना द्रव्य देते हैं कि उसका दारिद्र्य दूर हो जाता है, लोगों में भी ऐसा व्यवहार देखने में आता है कि जब कोई बिना मोल किसी को कोई वस्तु देता है तो वह उसकी कृतज्ञ होता है और उसका बड़े से बड़ा कार्य भी प्रसन्नता पूर्वक कर देता है। जब सामान्य पुरुषों का यह बर्ताव है तो भगवत् तो कृतज्ञता की मर्यादा जानने वालों में मुकुटमणि हैं, वे अपने भक्त के मनोरथ क्यों न पूर्ण करेंगे? तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य की भगवत् में प्रीति होती है तो नित्य के कर्म सहायक होकर दिनों दिन भगवत् की प्रीति बढ़ाते हुये ऐसे अनन्त हो जाते हैं कि भक्त का हृदय स्वच्छ और निर्मल हो जाता है, स्वच्छ हृदय में भगवद्भक्ति दृढ़ हो जाती है और उस भक्ति की कृपा से भगवद्भक्त कृतार्थ होकर भगवत् पद को प्राप्त कर लेता है और फिर उसका जन्म नहीं होता, वह सदा के लिये अजर, अमर, अखंड सुखी हो जाता है।

यह कर्मशास्त्र भगवत् की आज्ञा है नियम यह है कि जब कोई सेवक अपने स्वामी की आज्ञा पालन में तत्पर रहता है तो वह स्वामी भृत्य पर प्रसन्न होकर उसके मनोरथ सिद्ध कर देता है। भगवत् तो सब स्वामियों के भी स्वामी हैं, जो भक्त उनकी आज्ञा का पालन करेगा, उस पर प्रसन्न होकर उसका कार्य क्यों नहीं सिद्ध करेंगे? और उसे आवागमन की पीड़ा से क्यों नहीं मुक्त करेंगे? अवश्य करेंगे! निष्काम कर्म का अद्भुत प्रभाव है। निष्काम कर्म करने से संसारी कामनायें स्वयं ही भगवत् पूरी कर देते हैं, प्रह्लाद, अर्जुन, युधिष्ठिर, ध्रुव इत्यादि भक्तों की कथा से प्रसिद्ध है।

मंसाराम:--महाराज! यह जो आपने कहा, सो तो ठीक है परंतु एक बड़ी भारी शंका और होती है कि शुभ कर्म तो इसलिये न रहे कि भगवत् में जा मिले परंतु अशुभ कर्म भी मनुष्य के होते ही हैं उनकी निवृत्ति कैसे होगी? क्या उन्हें भी भगवत् ले लेंगे।

मस्तराम:--भाई! बात यह है कि कर्म दो प्रकार के होते हैं, एक अज्ञात और दूसरे ज्ञात। इन दोनों में से अज्ञात कर्म तो संध्या बलिवैश्वदेव, श्राद्ध अभ्यागत पूजन इत्यादि नित्य कर्मों से दूर हो जाते हैं क्योंकि नित्य कर्म भगवत् को अर्पण होने से अनन्त फल देने वाले हो जाते हैं, वे अज्ञात पाप कर्मों को तुरन्त ही भस्म कर देते हैं। दूसरे ज्ञात कर्मों का वृत्तान्त यह है कि जिस की निष्ठा शुभ कर्मों में होती है, इससे कोई महापातक तो होता ही नहीं और यदि कोई दैवयोग से हो भी जाता है तो जो भगवत् शुभ कर्म के लेने वाले हैं, वे ही अशुभ कर्मों के पातक को धो डालते हैं। यह बात श्रुति स्मृति से प्रसिद्ध है और न्याय भी यह है कि जिसने शुभ कर्मों का फल भगवत् को अर्पण कर दिया है, उसके अशुभ कर्म उसके निमित्त क्यों रहेंगे? नहीं रहेंगे! सकाम

और निष्काम के संबंध में यह लौकिक दृष्टान्त है कि जब किसी ठेकेदार अथवा नौकर से कुछ कार्य बिगड़ जाता है तो ठेकेदार या नौकर को हानि उठानी पड़ती है और यदि दास, दासी, अथवा पुत्र से कुछ काम बिगड़ जाता है तो उसकी हानि मालिक को उठानी पड़ती है। सकाम कर्मी ठेकेदार या नौकर के समान है और निष्काम भक्त दास या पुत्र के समान हैं। सिद्धान्त यह है कि निष्काम कर्मों का करना वेद की आज्ञा है, वेद की आज्ञा पालन करना उचित है, जितने ज्ञानी और भक्त पूर्व में हुएहैं, अबहैं और आगे होंगे केवल उत्तम कर्मों के प्रभाव से हुये हैं, और होंगे भगवद्गीता में लिखा है कि जनकादि को चित्त की स्थिरता कर्म करने से प्राप्त हुई थी सब शास्त्रों का सम्मत है कि बिना कर्म उद्धार नहीं होता। वेद की आज्ञा में तर्क करना वर्जित है, फिर भी प्रसंग से लिखते हैं कि ऊपर प्राण का उठना आदि जितने कर्म बताये हैं, वे सब परलोक के हेतु तो हैं ही, यहां भी उन से विशेष लाभ होता है।

मंसाराम:--महाराज! बहुत से तो ऐसा कहा करते हैं कि अजी! शास्त्र के अनुसार कौन चल सकता है? पांव धरने को भी तो जगह नहीं है!

मस्तराम:--भाई! इससे तो ऐसा सिद्ध होता है कि इन लोगों को वेदाज्ञा का पालन करना तो दूर रहा, वेदाज्ञा सुनने का भी अवसर प्राप्त नहीं हुआ। वेद में जो विधि निषेध आज्ञा है, वह इतनी सहज है कि उस पर सब चल सकते हैं। बहुत स्थल परपाप के प्रायश्चित्त के निमित्त चांद्रायण व्रत लिखा है वहां यह भी लिख दिया है कि न हो सके तो तीन दिन का या एक दिन का व्रत करले। सारांश यह है कि शास्त्राज्ञा सब सहज में हो सकती हैं परंतु पाप की बाहुल्यता से उनका सुनना समझना, और उनके करने पर कटिबद्ध होना कठिन हो रहा है। यह भी सोचना चाहिये कि यदि उनका पालन न हो सकता होता तो शास्त्र में लिखी क्यों जाती? कोई२ वेद को मिथ्या कहते हैं और कोई अन्य सामान्य विद्याओं के समान समझते हैं, उनकी दुर्गति होने में कोई संदेह नहीं है, जो स्वर्ग नरक को मिथ्या कहते हैं, वे भी अधोगति को प्राप्त होते हैं, अब संक्षेप से उन महात्माओं की कथा सुनाता हूं, जो धर्मनिष्ठ हुये हैं, ये कथायें भक्त माल में प्रसिद्ध हैं।

राजा हरिश्चन्द्र

राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंशी अयोध्या के बड़े प्रतापी राजा हुये हैं, इनकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। इन्होंने विश्वामित्र का ऋण चुकाने के लिये अपनी रानी और पुत्र को बेच दिया था और स्वयं एक चांडाल के यहां बिक गये थे अन्त में काशी राज की आज्ञा से अपनी रानी को तलवार खींच कर मारना चाहते थे यह देखकर धर्ती कांपने लगी आकाश में हाहाकार शब्द होने लगा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सब देवताओं ने राजा का हाथ पकड़ लिया भगवन् ने प्रसन्न होकर जब वर मांगने को कहा तो भक्ति के सिवाय राजा ने और कुछ वर न मांगा, भगवन् ने भक्ति वरदान देकर कुंवर रोहिताश्व और काशीराज के लड़के को जिला कर अयोध्या में राज्य करने की आज्ञा दी। आयु पर्यंत न्याय पूर्वक राज्य करते रहे और अन्त में पुत्र को राज्य देकर परम धाम को गये। सच है कि धर्म की दृढ़ता से सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

हुआ सत्यवादी हरिश्चन्द्र दानी।
दई राजधानी तजे पुत्र रानी॥
पुनः आप चांडाल के जा बिकाना।
नहीं धर्म त्यागा सहे कष्ट नाना॥

राज बलि

राजा बलि विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के पौत्र परम भगवद्भक्त और प्रतापी हुये हैं, भगवान् ने इन की परीक्षा लेने के लिये इन से भीख मांगी थी। गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी बलि अपनी प्रतिज्ञा से नहीं हटा, सब कुछ भगवान् के अर्पण कर दिया। और भगवान् को अपना द्वारपाल बना लिया। आज कल भी त्रिलोकी नाथ इसके द्वार पर रहते हैं! वाह! बलि! तूही एक बलि है अन्य सब दुर्बल हैं! भविष्य कल्प में तू अवश्य इंद्र पदवी पर विराजमान होगा!

तोटक छन्द

बलि भक्त शिरोमणि दान किया।
तिहुं लोक नपा तनु नाप दिया॥
छलिया हरि कूं छलि आप लिया।
दर का अपने दरवान किया॥

राजा दधीचि

राजा दधीचि ज्ञानी, भक्त और कर्म शास्त्र में पूर्ण निष्ठा वाले थे, इन्होंने अस्थि देवताओं को दे डाली थी, इंद्र उनका वज्र बनाकर वृत्रासुर को वध करके सुखी हुआ! सिद्ध पुरुष तो इस प्रकार बिना प्रयोजन भी कर्म शास्त्र की आज्ञा का पालन करें, और हम दो चार वेदान्त वाक्य सुनकर ज्ञानी बन जांय और कर्म त्याग दें! धन्य है!

उपेन्द्र वज्रा छन्दः

दधीचि राजा उपकार कीन्हे।
प्यारे तजे प्राणन अस्थि दीन्हे॥
वज्रास्त्र बांका सुरराज कीन्हा।
पापिष्ठ वृत्रासुर मार दीन्हा॥

दशरथ महाराज

दशरथ महाराजाधिराज परम भगवद्भक्त धर्म कर्म निष्ठ हुये हैं, पूर्ण ब्रह्म भगवत् ने वश होकर बाल चरित्र करके जिनको आनन्द दिया, उनके भाग्य की बड़ाई कौन कर सकता है! इन्होंने पूर्व में कैकई रानी को वरदान दिया था, इसलिये चौदह वर्ष का श्री रामचन्द्रजी को वनवास देकर रावणादि दुष्टों का वध करा के देवताओं को सुख दिया और अपना यश का सेतु संसार समुद्र में बांध दिया, जिसके प्रभाव से अब भी बहुत से तर रहे हैं और आगे भी तरेंगे। इन्होंने अपने प्राण और प्रिय पुत्र का त्याग किया परंतु सत्य का त्याग नहीं किया!

धर्म वीर दशरथ भये, तजे पुत्र पुनि प्राण
तजा नहीं पर सत्य व्रत, किया लोक कल्याण

भीष्म पितामह

भीष्मजी परम भगवद्भक्त ज्ञानी हुये, बारह महा भागवतों में इनकी गणना है, इतना होने पर भी कर्म में इनकी पूर्ण निष्ठा थी। श्राद्ध के समय इनके पिता का हाथ निकला, परन्तु इन्होंने हाथ में पिंड न दिया, वेदी पर ही रख दिया। दुर्योधन का अन्न खाने से यह युधिष्ठिर की तरफ नहीं गये। गंगाजी के उदर से इनकी उत्पत्ति है। पिता की प्रसन्नता के

लिये विवाह नहीं किया। दयालु इतने कि युधिष्ठिर को अपने मरण का उपाय बता दिया। भगवान् ने इनका प्रण सत्य करने को अपना प्रण तोड़ दिया बहत्तर दिन तक शर शय्या पर रहे और अंत में श्रीकृष्ण चन्द्र को आंखों के आगे देखते हुये परम धाम को पधारे।

भुजंगी छन्दः

हुये भीष्म धर्मज्ञ शास्त्रज्ञ ज्ञानी।
पिता भक्त पूरे यती शूर दानी॥
बड़ाई जिन्हें कृष्ण दी विश्व साखी।
तजी आपनी भक्त की टेक राखी॥

सुरथ और सुधन्वा

ये दोनों सगे भाई राजा नीलध्वज के पुत्र परम भागवत् हुये हैं, राजा ने मंत्री की शत्रुता से सुधन्वा को बिना विचारे आज्ञा भंग के अपराध में जलते हुये तेल के कढाह में डलवा दिया। तेल ठंडा हो गया फिर अंत में सुधन्वा ने अश्वमेध के घोड़े रोकने से अर्जुन से युद्ध किया, दोनों भाई खेत आये और भगवत् को प्राप्त हुये महादेवजी ने उनके शिर अपनी मुण्डमाला में लिये।

परम भक्त पावन महा, सुरथ सुधन्वा भ्रात
नीलकंठ निज कंठ में, धारत जिनके माथ

हरिदास

राजा हरिदास परम भक्त हुये, धर्म शास्त्र की आज्ञा पर दृढ़ रहे। यह पारन नगर के राजा जाति के तोदर राजपूत थे। यह राजा शिवि के समान शरणपाल, राजा दधीचि के समान दानी, वचन पालने में बलि के समान, भक्ति में प्रह्लाद के समान और राजा जगदेव के समान रिझवार थे। इनकी दृष्टि मात्र से एक वैरागी को ज्ञान होगया था। तोदर कुल में यह सूर्य समान हुये। कलियुग में बड़े धर्मात्मा हुये, तिलक माला से बहुत प्रीति रखते थे।

हरिदास महा हरि भक्त भये।
कुल तोदर स्वच्छ पवित्र किये॥
शिवि ज्यों करुणा समता मन में।
बलि ज्यों प्रण के परि पालन में॥

मंसारामः—राजा जगदेव की कथा क्या है, उनकी रिझवारता कैसी थी?

राजा जगदेव

मस्तरामः—राजा जगदेव बड़े शरवीर, न्याय निष्ठ और उदार थे। एकदिन एक नटनी ने आकर तमाशा किया। राजा उसका नाच, राग और कला से प्रसन्न होकर कुछ द्रव्य देने का विचार करने लगा परंतु कोई वस्तु नटनी के गुण के समान उस के ध्यान में न आई। तब राजा उसको शीश देने लगा। नटनी ने कहा कि शिर मेरा हो चुका, जब जरूरत आन पड़ेगी, ले जाऊंगी, रिझवारता आप पर समाप्त होगई अब मैं किसी के आगे अपना दाहिना हाथ नहीं फैलाऊंगी। नटिनी यह कह कर चली गई और जब उसने किसी दूसरे राजा को कला दिखलाई तो राजा कुछ देने लगा, नटिनी ने बांया हाथ पसारा। राजा ने कारण पूछा तो नटिनी ने कहा कि मेरा दायां हाथ राजा जगदेव के भेंट हो

चुका है, उस के बराबर कोई दानी नहीं है। राजा बोला कि बता, उसने तुझे क्या दिया है, मैं तुझे इस से दश गुणा दूंगा। नटनी ने बहुत कहा कि आप नहीं दे सकते परंतु राजा न माना और दश गुणा देने की प्रतिज्ञा की। नटनी राजा जगदेव से शिर मांग कर ले गई और राजा को दिखला कर कहने लगी कि तू भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर! राजा लज्जित होकर उठ गया और फिर मुख नहीं दिखलाया। नटनी ने शिर राजा जगदेव के धड़ पर रख कर वह ही राग गाया, कि जिस पर वह रीझा था, राजा तुरंत जी उठा! यह राजा जगदेव की बात संसार भर में फैल गई।

थे राजा जगदेवजी, गुणग्राहक यति राय
रीझे शिर अर्पण किया, नटनी कू सुख पाय

भक्त की भावना।

[ले० श्री० शोभाराम 'धेनुसेवक']

किसी को बल किसी को गुण, किसी को गर्व है धन का।
प्रभो! अभिमान मुझ को बस, तुम्हारे कंज चरणन का॥
कहीं प्रभुता है प्रतिभा है, कहीं पांडित्य पावनता।
मेरा कुछ है तो बस सर्वस्व, तू ही प्राण जीवन का॥
कहीं आदर का आराधन, कहीं पूजा प्रशंसा की।
मुझे कुछ लोभ है तो सब, तुम्हारे दिव्य दर्शन का॥
कहीं है ज्ञान का गौरव, कहीं विज्ञान का वैभव।
तुही विज्ञान गरिमा ज्ञान, गौरव ध्यान जन मन का॥
किसी को तात मात भ्राता, परिजन मित्र का बल है।
पिता माता सखा भ्राता, हितैषी तू ही भक्तन का॥
कहीं है शक्ति की सत्ता, कहीं मद की महत्ता है।
तुही अधिकार, शासक स्वत्व, प्रेरक, प्राण निज जनका॥
तुही सर्वस्व है मेरा, प्रभो! मैं भी तुम्हारा हूं।
तृपित रहता है चातक चित्त, तेरे रूप वर घन का॥
जहां जाऊं जहां जन्मूं, भ्रमूं मैं कर्म वश भगवन्।
मिले मुझ को वहीं अनुराग तेरे पूज्य पायन का॥

सत्य का स्वरूप

साधारणतया लोग समझते हैं कि अन्तः करण स्थित ज्ञान को वाणी द्वारा प्रगट कर देने का नाम ही सत्य भाषण कहलाता है सत्य का पता व्यवहार से ही लगता है। निष्कपटता के बिना सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता और सत्यभाषण करना निष्कपटता का प्रारम्भ है। सत्य का मूल स्वरूप और सिद्धान्तिक स्वरूप यह है कि सत्याचरण करने वाले को वह सब बातें छोड़ देनी चाहिएं जिनमें असत्य मिश्रित हो और ऐसा कोई भी कर्म्म नहीं करना चाहिए जिसमें असत्य का समावेश हो। इसलिए सत्यके जीवन में सत्य भाषण प्रारम्भिक क्रिया है। असत्यभाषण, सब प्रकार का छल, निन्दा, और सब प्रकार के खोटे और कटु वचन छोड़ देने चाहिएं और अन्तःकरण को इनसे साफ कर लेना चाहिये यदि उस में आध्यात्मिक ज्ञान को प्रवेश करने की इच्छा है असत्य-भाषी और निन्दक तमोगुण में विलीन हो जाता है और वह इतने घोर अज्ञान में व्यस्त होता है कि वह भलाई और बुराई की पहचान नहीं कर सकता। साथ ही वह इस बात का अनुमोदन करता रहता है कि असत्य-भाषण और कटु भाषण आवश्यक और भलाई के लिए हुए हैं और इसलिए इनकी पुष्टि करके वह अपनी रक्षा करता रहता है।

आध्यात्मिक ज्ञान के जिज्ञासु को विचार करके इस भ्रम से बचना चाहिए। यदि कोई जिज्ञासु ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिससे अन्य आदमियों को धोखा होता है या दूसरों की निन्दा करता है यदि वह कपट, द्वेष, और ईर्षा की बातें करता है तो समझ लेना चाहिये कि उसने अभी आध्यात्मिक ज्ञान की पाठशालामें प्रवेश भी नहीं कियाहै ऐसा जिज्ञासु चाहे आध्यात्मिक विद्या का अध्ययन कर रहा हो, चाहे सिद्धियों, या मानसिक चमत्कारों को सिद्ध करता हो. चाहे अदृश्य आत्माओं से बात चीत करने की विद्या सीख रहा हो, चाहे स्वप्न में दूर २ देशों में गमन करता हो या अध्यात्म विद्या को पुस्तकों द्वारा अध्ययन करता हो परन्तु यदि वह वाचाली और कटु-भाषी है तो अध्यात्म जीवन उससे बहुत दूर है।

अध्यात्म जीवन के लिए सरलता, निष्कपटता निर्दोषता, आन्तरिक शौच, करुणा, सौम्यता, नम्रता सन्तोष, दया, सहानुभूति, त्याग. प्रसन्नता, सद्भाव और प्रेम इनका होना आवश्यक है और जो मनुष्य इनका अध्ययन करेगा वही अध्यात्म जीवन का अधिकारी होगा इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग इस जीवन में प्रवेश करने का नहीं है।

असत्य भाषण और कुवाक्य अज्ञान के अत्यंत निकट सूचक चिन्ह हैं और जब तक मनुष्य इन का प्रयोग करता है तब तक समझ लेना चाहिए कि इस में अध्यात्म ज्ञान का लेश मात्र भी नहीं है। स्वार्थ और द्वेष से इनकी उत्पत्ति है।

निन्दा

निन्दा भी असत्य के सदृश्य है बल्कि यह उस से भी अधिक मार्मिक है क्योंकि इसमें बहुधा क्रोध का समावेश होता है। जब निन्दा को सत्य का रूप दे दिया जाता है तो इसमें ऐसे सच्चे आदमी भी फंस जाते हैं जो कभी जान पूछ कर झूठ नहीं बोलते। निन्दा के दो रूप हैं एक उसका बनाना और दूसरा उसका प्रचार करना इसी प्रकार निन्दा को सुनने वाले के लिए भी दो रूप हैं एक तो सुनना और दूसरे उसको व्यवहार में लाना। यदि सुनने वाले न हों तो निन्दा करने वाले का कर्म ही नहीं बन सकता। गन्दे शब्दों को सुनने के लिए ऐसे कानों की आवश्यकता है जो बुराई को ग्रहण करने वाले हों और ग्रहण करके उसकी खेती उपजाने वाले हों। इसलिए जो मनुष्य निन्दक की बात सुनता है और सुनकर विश्वास करता है और उसके प्रभाव में आकर उसको दूसरों तक पहुंचाता है वह भी उस आदमी के प्रति जिस की निन्दक निन्दा करता है उतना ही दोषी है जितना कि वह झूठी निन्दा की बात घड़ कर उसका प्रचार करने वाला। कुत्सित वाणी बोलने वाला प्रत्यक्ष निन्दक है और कुत्सित वाणी सुनने वाला अप्रत्यक्ष निन्दक है। बुराई का प्रचार करने में दोनों सहकारी हैं।

निन्दा एक साधारण बुराई है परन्तु बड़ा नीच और पातक कर्म्म है। निन्दा की बात अज्ञान से आरम्भ होती है और अन्धकार में फैलती है। इसका जन्म बहुधा वैमनस्य में होता है। जान पूछकर या भूल से जब एक आदमी का दूसरे के प्रति बुरा व्यवहार हो जाता है तो सुनने वाला अपनी सहन शीलता की कमी के कारण क्रोध और दोष में अपने मित्रों व अन्य लोगों के सामने बड़ी तीक्ष्ण भाषा में उस दुर्व्यवहार के दोष को बहुत बढ़ा कर कहता है। श्रोतागण उसकी बात सुनते हैं और दूसरे मनुष्य से पूछे बिना ही केवल उसकी अधिकतर बनावटी दुःख की कहानी के कारण उससे सहानुभूति करने लगते हैं और उस पर विश्वास करके दूसरे मनुष्य का दोषी समझ लेते हैं और इस कहानी को कुछ न्यूनाधिक करके दूसरों तक पहुंचाते हैं और इस तरह एक खैंचातानी और बिलकुल असत्य खबर शीघ्र एकसे दूसरे तक फैल जाती है।

निन्दा ऐसी बुराई है कि इससे दुःख और हानि दोनों उत्पन्न होते हैं यह इसलिये है कि सुनने वालों पर इसका ऐसा प्रभाव होता है कि वह मनुष्योंके विरुद्ध कि जिनको वह बहुत पवित्र समझते हैं थोड़ी देर में अपनी सम्मति बदल लेते हैं। इसलिए झूठी खबर का प्रभाव बड़ा घातक होता है। परन्तु इसका प्रभाव उन लोगों तक परिमित रहता है जिन्होंने सत्य के सद्गुण को अपनाया नहीं है और जिनका हृदय सत्य का प्रेमी नहीं है। इसकी पहचान यह है कि जब तक मनुष्य दूसरों के सम्बन्ध में झूठी बातें सुनने और उनका प्रचार करने का स्वभाव रखता है तब तक वह ऐसा असहनशील होता है कि जब उसके सम्बन्ध में कोई झूठी निन्दा की बातें सुना देता है तो यह दोष से आग बबूला हो जाता है, उस की निन्दा भंग होजाती है और उस का चित्त अशान्त होजाता है वह समझता है कि उसके दुःख का कारण दूसरा आदमी है और उस आदमी की झूठी बातें हैं। वह मूढ़ यह नहीं जानता कि तेरे

अपने स्वभाव में ही असत्य की जड़ जमी हुई है जिससे तू दूसरों की बुराई प्रसन्नता से सुनता है और स्वयं सहन शीलता से शून्य है।

उस सज्जन के मन में जो सत्य वक्ता है और जिसका मन गन्दी वाणी की परछाई से भी दूर रहता है अपनी निन्दा की सूचना मिलने और सुनने पर कभी क्षोभ नहीं आता है। कोईभी मनुष्य दूसरेके कुकर्म्मों से दोषी नहीं हुआ करता। इसलिए सब प्रकार उसके विरुद्ध मिथ्या भ्रमोत्पादक धृष्टता के प्रचार के होने पर भी उसका अन्तःकरण निर्मल और चित्त शान्त रहता है।

सत्य-भाषण पवित्र, धार्मिक और संयमी जीवन का प्रारम्भ है। जो मनुष्य अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहता है, और जिसका यह भी विचार है कि संसार की बुराई और दुःख को कम करे तो उसको चाहिये असत्य भाषण और निन्दा करने के कर्म्म को अपने विचारों और शब्दों में से निकाल देवे। मनुष्य के भाषण में असत्य और निन्दा की झलक भी नहीं होनी चाहिये क्योंकि असत्य मिश्रित सत्य असत्य से भी बुरा होता है और निन्दा करने से परहेज हो नहीं करना चाहिये बल्कि निन्दाकी बातें सुनना भी सर्वथा छोड़ देनी चाहिये। निन्दा करने वाला दया का पात्र है क्योंकि निन्दक सदैव दुःखी और अशान्त रहता है। झूठे को सत्य-भाषण के आनन्द का ज्ञान नहीं हो सकता और निन्दक का शान्ति में प्रवेश नहीं हो सकता।

मनुष्य का आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्य की वाणी से ही प्रगट हो जाता है। जिसकी वाणी संयम में नहीं है वह मूर्ख अपने अज्ञान से शेखचिल्ली की भान्ति चाहे अपने मन में बादशाह बना बैठा हो परन्तु सत्य बात यह है कि जब तक उसकी यह दशा है वह आध्यात्मिक ज्ञान से कोसों दूर है।

भगवद्भक्त राजा उपरिचर

प्राचीन काल में उपरिचर नामक राजा पृथिवी पर राज्य करता था, उसकी इन्द्रके साथ मित्रता थी। और वह नारायण का परम भक्त था, धार्मिक था, पिता की सर्वदा भक्ति भाव से सेवा किया करता था नारायण की कृपा से वह समस्त संसार का चक्रवर्ती राजा हो गया था। वह सर्वदा सबसे पहिले नारायण को भोग लगाता, उससे बचे हुए भाग से पितरों का पूजन करता उससे जो बचता तिस से ब्राह्मणों का पूजन करता पश्चात् अपने आश्रितों को बांटता और इन सबके पीछे जो अन्न शेष रहता था उसे आप खाता था। वह सर्वदा सत्य भाषण करता था, किसी की हिंसा नहीं करता था, वह देवाधिदेव, सब के आदि और अन्त रहित, जगत् के कर्ता अविनाशी जनार्दन

को सर्व प्रकार से भक्ति करता था। उस राजा की भगवान् में ऐसी अनन्य भक्ति देख कर देवराज इन्द्र उन्हें बड़े आदर पूर्वक अपने आसन पर बिठाते थे। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठादि ऋषियों ने जिस उत्तम पञ्चरात्र नामक उत्तम शास्त्र का एक मत से उपदेश किया था, जो चारों वेदों के अनुकूल है तथा जिसमें उत्तम लोक-धर्म वर्णित हैं उस शास्त्र का यह राजा भली प्रकार से पालन करता था। यह सप्त ऋषि अहंकार आदि सात प्रकृति की मूर्तियें हैं और स्वयम्भू ब्रह्मा आठवीं प्रकृति है। यह आठ प्रकृति समस्त संसार को धारण कर रही हैं। एकाग्र मन वाले, इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, संयम में प्रीति रखने वाले, भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल को जानने वाले, सत्य परायण ऋषियों ने जगत् के कल्याणार्थ यह शास्त्र रचा है। इस शास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन किया गया है तथा स्वर्ग और पृथिवी के लिये अनेक प्रकार की मर्यादाएं बांधी हैं। इन सब ऋषियों ने सहस्र दिव्यवर्ष पर्यन्त भगवान् नारायण की आराधना की थी, तब भगवान् ने सरस्वती देवी को आज्ञा दी थी, तब भगवती सरस्वती ने लोगों का हित करने के लिये सप्तर्षियों के शरीर में प्रवेश किया। तब ऋषियों ने सरस्वती की कृपा से यह शास्त्र बनाया था। तदनन्तर ओंकार तथा स्वरों से पूजित उस शास्त्र को ऋषियों ने भगवान् को सुनाया। उस शास्त्र को सुन कर भगवान् प्रसन्न हुए और उन्होंने अदृश्य रह कर ही ऋषियों से कहा "कि इस शास्त्र से लोगों में धर्म का प्रचार होगा। प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों मार्गों में यह शास्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के पूर्ण अनुकूल है। मैंने नियमानुसार प्रसन्नता से ब्रह्मा को, क्रोध से रुद्र को, और प्रकृति के प्रतिनिधि रूप तम को उत्पन्न किया है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, अग्नि तथा भूत नाम-धारी सम्पूर्ण पदार्थ यह जैसे प्रमाण माने जाते हैं वैसे ही तुम्हारा यह शास्त्र भी प्रमाण माना जायगा। स्वयम्भू मनु स्वयं ही इस शास्त्र से धर्म का प्रवचन करेंगे। प्रजापालक वसु राजा (उपरिचर) भी इस शास्त्र को बृहस्पतिजी से पढ़ेंगे। वह राजा मेरा भक्त होगा और शास्त्रानुसार समस्त क्रियायें करेगा"।

तदनन्तर ऋषियों ने धर्म के मूल रूप उस शास्त्र का जगत् में प्रचार किया। प्रथम युग में अंगिरा के बृहस्पति जी उत्पन्न हुए तब उन्होंने वेद वेदांग सहित वह शास्त्र बृहस्पति जी को पढाया। बृहस्पतिजी ने वह शास्त्र अपने शिष्य राजा उपरिचर को पढाया था।

एकबार उस भगवद्भक्त राजा ने अश्वमेध नामक यज्ञ किया था। उस यज्ञ में सब बड़े २ ऋषि तथा महर्षि सम्मिलित हुए थे। राजा की मर्यादा के अनुसार उस यज्ञ में पशु हिंसा नहीं की गई थी। वह राजा स्वयं अहिंसक था, पवित्र था, उदार मन वाला था, और कामनाओं से रहित था, उसके कर्म प्रशंसनीय थे इस हेतु वनज पदार्थों का ही उपयोग किया गया था। उसकी भक्ति से देव देव भगवान् विष्णु उस पर प्रसन्न हुए और उसको साक्षात् दर्शन दिया, परन्तु और किसी को उनका दर्शन नहीं हुवा। भगवान् श्री हरि ने पुरोडास स्वयं ग्रहण किया। तब बृहस्पति जी को क्रोध आगया। उनको क्रुद्ध देख कर सब समझाने लगे और कहने लगे कि "वह देव जिन पर दया करते हैं वह ही उनको देख सकते हैं अन्य नहीं"। तदनन्तर एकत,

द्वित और त्रित ऋषि कहने लगे "कि हम ब्रह्मा जी के मानस पुत्र प्रसिद्ध हैं। हम भगवद्दर्शन पाने की इच्छा से उत्तर दिशा की ओर गये थे, वहां अपने मनको नियम में रख कर सहस्र वर्ष पर्यन्त हमने कठिन तपस्या की, तप करने से हमारे शरीर सूखी लकड़ी की भान्ति हो गये। हम सर्वदा यह ही विचारा करते थे कि हमको देव देव सनातन नारायण स्वरूप भगवान् के दर्शन किस प्रकार होंगे। एकवार हमको आकाश वाणी हुई "कि हे ब्राह्मणो! तुमने प्रसन्न मन से भली प्रकार तप किया है, तुम भक्त यह जानना चाहते हो कि परमात्मा का दर्शन किस प्रकार होगा अतः सुनो-क्षीर सागर के उत्तर की ओर नारायण परायण रहने वाले चन्द्रमा की समान कीर्ति वाले, एकान्त भाव से रहनेवाले, परम पुरुष भगवान् पुरुषोत्तम की भक्ति करने वाले मनुष्य रहते हैं। तुम उस श्वेत द्वीप में जाओ वहां मेरा स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से विराजमान् है' हम परमात्मा के दर्शनों की इच्छा से वहां पहुंचे, यद्यपि हमारा मन भगवान् में ही लगा हुवा था, तथापि हम वहां जाते ही उनके तेज से अन्धे हो गये। तदनन्तर दैवयोग से हमें ज्ञान हुवा कि जिसने तप नहीं किया है वह पुरुष भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता। अतएव हमने फिर सौ वर्ष पर्यन्त बड़ा भारी तप किया। व्रत पूर्ण होने पर हमको पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शन हुए, जो पुरुष तप नहीं करता, तथा भगवद्भक्त नहीं है उसको भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते। नारायण महापुरुष हैं, विश्व के रचने वाले हैं, वह आदि तथा अन्त रहित हैं, वे अव्यक्त हैं तथा इन्द्रियों के जानने में स्पष्ट रूप से नहीं आसकते हैं"। इस प्रकार जब एकत आदि ऋषियों ने बृहस्पति जी को समझाया तब उनका क्रोध शान्त हुवा। राजा उपरिचर भी यज्ञ समाप्त करके भली प्रकार पूजा का पालन करने लगा तदनन्तर नारायण परायण रह कर नारायण के नाम को जपने लगा। इसलिये श्रेष्ठ निष्ठा वाले पुरुष जिस गति को पाते हैं ऐसी ब्रह्म स्थान से भी ऊंची गति उसने पाई।

गोवंश के उपकार

[ले० श्री० पं० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री]

गावः प्रतिष्ठा भूतानां,
गावः स्वस्त्ययनं महत्।

मनुष्य प्राणी जब से अपनी माता के गर्भ में आता है, तभी से वह गोवंश के अनंत उपकारों से अपने आपको आवद्ध करता जाता है। गर्भावस्था में रहते समय उसका जिन भोज्य पदार्थों से भरण पोषण होता है वे उन्हीं गेहूं, चावल आदि भोज्यान्नों और दूध, दही, घी आदि गव्य पदार्थों से बनते हैं जिन्हें उसकी माता खाती पीती है। जिस माता को गेहूं आदि सात्विक भोज्यान्न और दूध आदि गव्य पदार्थ जितनी अधिक शुद्ध और पवित्र दशा में मिलते हैं उतनी ही अधिक शुद्ध और पवित्र दशा में गर्भस्थित बालक की बुद्धि और धृति सात्विक होती है और उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यहीं गोवंश के उपकारों

का अंत नहीं हो जाता। वरन बालक के जन्म काल से लेकर उसके पूर्णायु भोग कर मृत्यु को प्राप्त होने तक उसे गोवंश से वह सहायता मिलती रहती है जो अन्य किसी से नहीं मिल सकती।

जब तक बालक दूध पीता है तबतक उसे गौ दूध देती है। जब से वह गेहूं, चावल, मिठाई आदि खाना प्रारंभ करता है तब से वे सब पदार्थ उसे गोवंश की कृपा से प्राप्त होते रहते हैं। बाल्यावस्था को समाप्त कर जब वह अपनी जीविका के उपार्जन क्षेत्र में पदार्पण करता है तब भी वह गोवंश की सहायता से ही यशस्वी होता है। लिख पढ़ कर वह वकील, बैरिष्टर, डाक्टर, सरकारी पदाधिकारी हो जाता है, तब भी उसे अपने जीवन और स्वास्थ्य तथा बलवीर्य्य की प्राप्ति तथा रक्षा के लिये विश्व माता गौका ऋणी ही बना रहना पड़ता है। सरकारी नौकरी न कर यदि वह किसी प्रकार का व्यवसाय करता है तो अपने व्यवसाय के सब पदार्थों के लिये उसे गोवंश का ही ऋणी रहना पड़ता है।

इस समय जो चौंतीस करोड़ भारतवासी कृषि कर्म्म करके अपनी जीविका कमाते हैं वे तो प्रत्यक्ष रूप में गोवंश के ऋणी हैं। गौ के दूध से, घी से उनके शरीर और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। गौके गोबर और मूत्र से उनके खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। गौ के गोबर और मूत्र से फसलों को हानि पहुंचाने वाले पाला और तुषार आदि रोगों से फसलों की रक्षा होती है। उनके पुत्र बैलों द्वारा खेतों की जुताई और बोनी की जाती है। जब फसल पक जाती है, तब उसे खेत से खलिहान में लाना, पैरों से मींजना और फिर वहां से किसानों के घर या बाजार में लेजाना आदि कामों को गोवंश के प्राणी वैल ही किया करते हैं।

जो लोग, धान्य, कपास और सूत तथा कपड़े आदि को बेचने का व्यवसाय करते हैं वे भी परोक्ष रूपसे तदर्थ गोवंश के ही ऋणी रहा करते हैं गोवंश के प्राणी न हों तो नतो उन्हें कपास ही मिल सके और न धान्य सूत और कपड़ा ही मिल सकता है। भाव यह है कि उक्त प्रकार के सब व्यवसायी अपने अपने व्यवसाय द्रव्यों के लिये गोवंश के ही ऋणी हैं। इनके सिवा जो लोग बीड़ी, गांजा; अफीम, और शराब आदि स्वास्थ्य नाशक द्रव्यों का व्यवसाय कर धनोपार्जन करते हैं, उन्हें भी वे पदार्थ गोवंशकी कृपासे ही मिलते हैं। सारांश, मनुष्य के जीवन को बनाये रख कर उसकी रक्षा करने की और उसे मंगल मय बनाने की जितनी अद्भुत और प्रबल शक्ति अकेले गोवंश में है, उतनी और वैसी शक्ति अन्य दूसरे प्राणियों में नहीं है। गोवंश के उक्त सब गुणों की खोज आर्य्यों की महती खोज है। उस खोज का महत्व आधुनिक वाष्प और विद्युत आदि की खोज से किसी प्रकार कम नहीं है। पाश्चात्य जगत् की उक्त खोजों ने उसका स्थान अभी तक नहीं ले पाया है। हां, पाश्चात्य जगत् की खोजों ने आर्य्यों की उक्त खोज से लाभ उठाने की मात्रा को अवश्य ही बढ़ा दिया है। इसके लिये वे गोवंश के जितने कृतज्ञता भाजन हैं, उससे कहीं बढ़ कर हम भारतवासी अधम गोभक्त निन्दनीय और लांछनीय हैं। क्योंकि हम लोग अपने पूर्वज आर्य्यों की उक्त महती खोज का इस समय घोर निरादर कर आत्मघात कर रहे हैं। हम लोग आज नेता के उच्च पद पर आरूढ़ होकर अपने स्वागत में हजारों और लाखों रुपये

खर्च कराते हैं। हम लोग सरकारी उच्च पद पर आसीन होकर बड़े बड़े महत्व और प्रशंसा के साथ काज करते रहते हैं। पर जिस गोवंश की कृपासे हम अपने जीवन और स्वास्थ्य के रक्षक पदार्थ सात्विक भोज्यान्न और सव्य पदार्थ पाते हैं, उसका वध द्वारा जो अपार नाश किया जा रहा है, उसे रोकने के लिये व्यापक रूप से कुछ भी उद्योग नहीं करते। हमारी यह कृतघ्नता निःसंदेह निरुपम और अकथनीय है। हमारे इस अविवेक और इस कृतघ्नता का अंत हमने समय रहते न कर डाला तो हमारा भारत में अपना अस्तित्व बनाये रखना कठिन ही नहीं किन्तु असभव होजायगा। जिस अविवेक, जिस अज्ञान और जिस कृतघ्नता के साथ हम अपने स्वस्त्ययन गोधन की उपेक्षा और अवहेलना कर रहे हैं, उन सबको जला कर हमें अपने अस्तित्वाधार और मंगलायतन गोधन की रक्षा करनी चाहिये।

गोवंश के हम भारत वासियोंपर जो अनंत उपरकार हैं, उनके अनुसार ही हमको गोवंश की रक्षा और वृद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये। मिल जुल कर और अपने प्रतिनिधियों द्वारा सरकार से गोवध रोकने की प्रार्थना करना आदि निरर्थक उद्योग बहुत हो चुके। अब हमें स्वयं अपना धन, अपना पुरुषार्थ, और अपनी बुद्धि बल खर्च करके प्राणाधार गोधन का सुधार और उत्कर्ष करना चाहिये। अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं दीख पड़ता इस लोकोक्ति के अनुसार हमें स्वयं अपने गोधन की रक्षा करनी चाहिये। जब हम लोग अपने पूर्वज आर्य्यों के गवायुर्वेद का अनुकरण कर अपने गोवंश का परिपालन करने लगेंगे तब हमारे वर्तमान प्रभु अंग्रेजों को निरुपाय होकर हमारे गोधन के लिये गोचर भूमि को कर मुक्त करना पड़ेगा। इस समय भारतीय इने गिने धनवान् गो भक्तों का यही परम पुनीत कर्तव्य कर्म्म है कि वे लोग गोसाहित्य के प्रचार द्वारा भारतीय अधर गोभक्त जनता पर महात्मा वेद व्यास का यह उपदेश प्रकट कर देवें कि।

गोरक्षा कृषि वाणिज्यं लोकानामिह जीवनम्
किं धेन्वा वाप्य दुग्धया ॥

अक्षर अक्षर सत्य है। जो लोग पिंजरापोल और गौशाला खोल कर विकलांग और ठाठ गौओं की प्राण रक्षा कर रहे हैं, उन्हें व्यास जी के उक्त अर्थवान् और सारगर्भित उपदेशों पर पूर्ण रूप से विचार करना चाहिये। हमारी उपेक्षा के कारण-गोपरिपालन की शिक्षा की ऊनता के कारण-वध्य गोधन की संख्या इतनी अधिक बढती जाती है कि धन खर्च कर उसका रोकना सर्व्वथा असंभव है। गोवंश की रक्षा का फल प्रद उपाय यही है कि हम अपने किसान, भाइयों में, ग्वाले भाइयों में और नागरिक लोगों में गोसाहित्य के प्रचार द्वारा गोपरिपालन की शिक्षा का पूचार करें। धनवान गोभक्तों को इस बात से शिक्षा लेनी चाहिये कि जब विदेश धनवान् भारतमें ईसाई धर्म्म का पूचार करने के लिये अकेले बंगाल प्रांत में प्रति वर्ष बाइबल की ढाई लाख प्रतियों का पूचार करते रहते हैं, तब उनके लिये क्या यह उचित नहीं है कि वे लोग भारत की बत्तीस करोड़ जनता पर गोवंश के अपार उपकारों को प्रकट करने के लिये तथा उसके उचित परिपालन की शास्त्रीय विधि को उनपर प्रकट करने के लिये गोसाहित्य की, करोड़ों प्रतियों का प्रति वर्ष पूचार करते रहा करें। सर्व्व साधारण जनता पर गोपरिपालन

की प्रधान प्रधान बातें प्रकट करने वाला सस्ता गोसाहित्य प्रस्तुत है। उसकी एक लाख प्रतियों का प्रचार ३१२५) में हो सकता है। जो पिंजरापोल प्रति वर्ष लाखों रुपये विकलांग गोधन की प्राण रक्षा में खर्च करते रहते हैं, उन्हें दस हजार रुपया प्रति वर्ष सस्ते गोसाहित्य के प्रचार में भी लगाते रहना चाहिये। उसी प्रकार धनी व्यवसाइयों को भी अपने पास पड़ोस के किसानों में गोसाहित्य का प्रचार करते रहना चाहिये। हमारे जीवनाधार गोधन की रक्षा में अज्ञान वश हम जो आलस्य कर रहे हैं, उस अज्ञान और आलस्य की होली तापने का बस यही एक फल प्रद उपाय है।

निष्काम भक्ति

[ले० श्रीमती सावित्रीदेवी]

प्रत्येक व्यक्ति के लिये चाहे वह किसी देश वा जाति से सम्बन्ध रखता हो भक्ति का क्षेत्र निर्विघ्न खुला पड़ा है। संसार में जितने भी कार्य होते हैं वे सब किसी न किसी प्रकार की भक्ति के अन्तर्गत होते हैं। परन्तु अन्य भक्तियों को छोड़कर भगवद्भक्ति दो प्रकार की होती है। एक सकाम भक्ति, दूसरी निष्काम भक्ति। सकाम भक्ति करने से प्रत्येक मनुष्य की कामनायें पूर्ण तो अवश्य किसी न किसी समय हो जाती हैं परन्तु उसके पूर्ण होने के पश्चात् दूसरी कामना पैदा हो जाती है अर्थात् कामनाओं का एकके पीछे दूसरी का प्रादुर्भाव होता ही रहता है और उनका अन्त किसी भी काल में नहीं होता और बिना कामनाओं के अन्त हुये मनुष्य को जीवन में सच्चा सुख व शान्ति कहां?

उस सच्चे सुख शान्ति की उपलब्धि का निष्काम भक्ति ही श्रेष्ठ साधन है। वही प्राणीको सब से उत्कृष्ट शिक्षा अर्थात् परमानन्द पद तक पहुंचा देता है।

यदि हम प्राकृतिक वस्तुओं से अपनी भक्ति का सम्बन्ध जोड़ें तो हमको उसी वस्तु की प्राप्ति होसक्ती है जो कि प्राकृतिक कृत्रिम और अन्त में विनाश होने वाली है। परन्तु यदि हम प्रकृति के कर्ता, विश्व नियन्ता से अपनी भक्ति का नाता जोड़ें और वह भी निष्काम भाव से, तब चाहे हम किसी समाज या राष्ट्र में रह कर के कोई कार्य अथवा अपने जीवन के किसी परम उद्देश्य को लेकर कर्तव्य पालन करें तो उसको हम अवश्य ही सुगमता पूर्वक पूर्ण कर सकेंगे और प्रेम और भक्ति के अतिरिक्त हमको अन्य वस्तु दृष्टि न पड़ेंगी। सांसारिक क्लेश, तथा राग द्वेषादिकों का विनाश भी हो जावेगा और उस महत् परम पद (कैवल्य) परमानन्द की प्राप्ति हो जायेगी और उसके पश्चात् किसी भी सांसारिक पदार्थों की इच्छा न होगी। अतः सकाम भक्ति को छोड़ कर निष्काम भक्ति करने में ही हमारा परम श्रेय है। भगवान् गीता में कहते हैं:-

मत्कर्म कृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्व भूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

जो मेरा भक्त मेरी प्राप्ति के अर्थ कर्म करने वाला, मेरे परायण रहने वाला, तथा अन्य सारे

पदार्थों से आसक्ति छोड़ने वाला और सारे भूतों से वैर रहित है, वह ही मुझे प्राप्त होता है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्

जो पुरुष मेरे परायण रह कर तथा सारे कर्मों को मुझ में अर्पण करके मुझको अनन्य योग से ध्यान करके उपासते हैं, उनको मैं शीघ्र ही संसार सागर से पार करता हूं।

श्रद्धा अंधी है या सूझती?

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा अनूपशहर]

क दिन एक शिष्ट पुरुष ने एक सन्त से यह प्रश्न किया:-

शिष्टः- महाराज! श्रद्धा अंधी है या आंख वाली? मेरी बुद्धि श्रद्धा को अंधी अंगीकार करती है। आंख वाली श्रद्धा को श्रद्धा अंगीकार न कर के बुद्धि का निर्णय अंगीकार करती है। आपके ऊपर मेरी श्रद्धा है, मेरी बुद्धि आपके निर्णय को अवश्य मान लेगी।

संतः- बच्चा! बात तो तू ठीक ही कहता है परंतु बुद्धि और श्रद्धा के स्वरूप को नहीं जानता इसलिये प्रश्न करता है। बच्चा! श्रद्धा और बुद्धि दो नहीं हैं, एक ही हैं। बुद्धि की बहुत सी वृत्तियों में से श्रद्धा भी एक वृत्ति है, जो बुद्धि अंधी होती है, उसकी श्रद्धा भी अंधी होती है और जो बुद्धि सूझती- आंख वाली होती है, उसकी श्रद्धा भी आंख वाली होती है। बुद्धि कारण है और श्रद्धा कार्य है। जो गुण कारण में होते हैं, वे ही कार्य में आते हैं। बुद्धि सात्विक, राजस और तामस, इन तीन गुणों की बनी हुई है इसलिये श्रद्धा भी इन तीन गुणों वाली ही होती है। सात्विक यानी सत्व प्रधान बुद्धि की श्रद्धा सात्विकी होती है, राजसी बुद्धि यानी रजो प्रधान की श्रद्धा राजसी होती है और तमो प्रधान तामसी बुद्धि की श्रद्धा तामसी होती है। पूर्व जन्म के धर्माधर्मादि संस्कारों के अनुसार इस जन्म में बुद्धि प्राप्त हुई है। उसी के अनुसार सब की श्रद्धा है। सात्विक श्रद्धा प्रकाश वाली होने से आंख वाली है और संसार रूप बंधन से मुक्त करके निश्रेयस करने वाली है, इसी का नाम भक्ति है। राजसी और तामसी श्रद्धा चंचलता और अंधेरा रूप होने से अंधी है और संसार में फंसाने वाली होने से बन्धन करने वाली है, इसी का नाम माया है। माया आंखें बंद करने वाली है, इसलिये अंधी है, और भक्ति

आंखे खोलने वाली है, इसलिये सूझती है। जिनके संस्कार निकृष्ट होते हैं, उनकी मायामें प्रीति होती है और जिनके उत्तम संस्कार होते हैं, उनकी भक्ति में प्रीति होती है। सत्संग और सत्शास्त्र से सात्विकी श्रद्धाकी वृद्धि होती है और कुसंग और असत्शास्त्र से राजसी और तामसी श्रद्धा बढती है। यदि जन्मसे ही सात्विकी श्रद्धा होती है तब तो मनुष्य को शीघ्र ही सत्यासत्य का निर्णय हो जाता है और उसका कल्याण इसी जन्म में हो जाता है और यदि जन्म से सात्विक श्रद्धा न हो और संयोग वश सत्संग करने लगे तो उसकी श्रद्धा भी धीरे २ सतोगुणी हो जाती है और दो चार जन्मों में उसका कल्याण होना संभव है। सत्संग की महिमा अपार है सत्संग अंधी श्रद्धा को भी सूझती बना देता है। सत्संग और सत्शास्त्र के सिवाय अन्य उपाय से जन्म प्राप्त अंतः करण बदल नहीं सक्ता। यह ही बात भगवान् ने गीता में अर्जुन से कही है:-

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा
सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु

(गी० १७।२)

अर्थः—देहाभिमानी पुरुष की स्वभाव जन्य श्रद्धा सात्विकी राजसी अथवा तामसी तीन प्रकार की होती है, उनको सुन। जन्मान्तरों में उपादन किये हुये धर्माधर्मादि संस्कार जिनसे यह जन्म आरंभ होता है, उन संस्कारों का नाम ही स्वभाव है। वह ही जन्म प्राप्त अंन्तःकरण है। इसी अन्तः-करण की विचित्रता से श्रद्धा की विचित्रता है क्योंकि अंतःकरण ही श्रद्धा का उपादान कारण है। यह ही बात भगवान् कहते हैं:-

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

अर्थः- हे भारत! सब प्राणियों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुसार होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है इसलिये जैसी जिस की श्रद्धा है, वैसा ही वह है।

श्रद्धा का अर्थ समझने के लिये इस श्लोक का अर्थ विस्तार से करते हैं:- हे अर्जुन! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये पांच सूक्ष्म महा-भूत त्रिगुणात्मक हैं। इन सत्वगुण प्रधान पंच महाभूतों से अंतःकरण उत्पन्न हुआ है इसलिये अन्तः-करण प्रकाश स्वभाव वाला है। प्रकाश स्वभाव वाला होने से इस अन्तःकरण को सत्व कहते हैं। यह अन्तःकरण किसी २ शरीरमें तो अद्भूत सत्वगुण वाला होता है जैसा कि देवताओं का अन्तःकरण। (जो सत्वगुण से न दबे, उसका नाम उद्भूत सत्वगुण है) किसी शरीर में यह अन्तःकरण रजोगुण से दबे हुये सत्वगुण वाला होता है जैसा कि यक्षराक्षसादि का अन्तःकरण। किसी शरीर में यह अन्तःकरण तमोगुण से दबे हुये सत्वगुण वाला होता है जैसे कि भूत प्रेतादि का अन्तःकरण मनुष्यों का अंतःकरण विशेष करके व्यामिश्रित ही होता है परंतु मनुष्य के अन्तःकरण में यह विशेषता है कि शास्त्रजन्य विवेक ज्ञान से मनुष्य रजो तमोगुण को दबा कर अपने अन्तः-करण को उद्भूत सत्गुण वाला बना सक्ता है। जो पुरुष शास्त्र जन्य ज्ञान से शून्य होते हैं, उन सब प्राणी मात्र की अपने अपने अन्तःकरण अनुसार श्रद्धा होती है यानी अन्तःकरणों की विचित्रता से प्राणियों की श्रद्धा की भी विचित्रता होती है। जिसमें सत्व-

गुण प्रधान होता है, उस अन्तःकरण में सात्विकी श्रद्धा होती है, जिसमें रजोगुण प्रधान होता है, उस अन्तःकरण में राजसी श्रद्धा होती है और जिसमें तमोगुण प्रधान होता है, उस अन्तःकरण में तामसी श्रद्धा होती है। हे अर्जुन! जैसे अन्न की विशेषता वाला यज्ञ अन्नमय कहलाता है इसी प्रकार श्रद्धा की बाहुल्यता वाला पुरुष श्रद्धामय कहलाता है। सात्विकी श्रद्धा वाला पुरुष सात्विकी कहलाता है, राजसी श्रद्धा वाला पुरुष राजसी कहलाता है और तामसी श्रद्धा वाला पुरुष तामसी कहलाता है।

हे भावुक! तू तो 'भक्ति' 'कल्याण' 'वेदान्त-केसरी' आदि परमार्थ तत्व प्रतिपादन करने वाले पत्रों का अवलोकन करने वाला है, भला! तेरी श्रद्धा अंधी कैसे हो सक्ती है? तेरी बुद्धि सात्विकी है और सात्विकी बुद्धि की श्रद्धा भी सात्विकी ही होती है। सात्विकी श्रद्धा प्रकाश रूप है, इस श्रद्धा वाला पुरुष भी प्रकाशमय होता है। ज्यों२ श्रद्धा में प्रकाश बढ़ता जाता है त्यों२ पुरुष में भी प्रकाश अधिक होता जाता है। यद्यपि पुरुष स्वरूप से प्रकाश स्वरूप शुद्ध ही है परन्तु अंधी श्रद्धा वाला होने से अपने को भूल गया है और सूझतों से अधिक सूझता होकर अपने को अंधा मानने लगा है। अपने को न जानना, यह ही अन्धापन है। जो स्वयं अपने को नहीं जानता, वह दूसरे को भी यथार्थ रूप से नहीं जान सकता। इसलिये इस अन्धी श्रद्धा ने सबको दुःखी कर रक्खा है। इस अन्धी श्रद्धा से मुक्त होने के लिये सूझतो—सात्विकी श्रद्धा ही उपाय है। प्रकाश से अंधेरा निवृत्त होता है, यह लोक प्रसिद्ध है। इसी प्रकार सात्विकी प्रकाश स्वरूप श्रद्धा तम आवरण रूप राजसी तामसी श्रद्धा को निवृत्त करने वाली है। यह श्रद्धा अंधेरे को हटा कर तुझे परम प्रकाश स्वरूप को बता कर स्वयं भी हट जाती है। इसलिये जब तक तुझे अपने स्वरूप का ज्ञान न हो तब तक इस प्रकाशमयी श्रद्धा को ग्रहण करके सत्संग रूप प्रकाश से इसके प्रकाश को बढ़ाता ही रह। ऐसा करने से दिन प्रति दिन तेरा आनन्द भी अधिक होता जायगा क्योंकि अज्ञान—अंधेरे से ही दुःख है। अंत में तू परमानन्द स्वरूप अपने आत्मा को जान कर हमेशा के लिये सुखी हो जायगा! फिर जन्म, मरण, शोक, भय, काम, क्रोध लोभ, मोहादि जो संसार भर को दुःख दे रहे हैं, तुझे, स्वप्न में भी दिखाई न देंगे अन्त में यह ही कहना है कि भक्ति रूप सात्विक श्रद्धा संसार से मुक्त करने वाली है और माया रूप रजो तमोगुणी श्रद्धा संसार में डालने वाली है। सात्विक श्रद्धा शास्त्रानुकूल होने से उपादेय है और रजो तमोगुणी श्रद्धा शास्त्र विरुद्ध होने से त्याज्य है। इस नीचे की कुंडली में यह ही बात दर्शाई है।

कुंडली

श्रद्धा से ही मोक्ष है, श्रद्धा से ही बंध।
श्रद्धा करदे सूझता, श्रद्धा करदे अंध॥
श्रद्धा करदे अंध, योनि नाना भटकावत।
श्रद्धा खोलत आंख, प्राज्ञ तत्त्वज्ञ बनावत॥
श्रद्धा अंधी त्यागि, वेद सिद्धान्त विरुद्धा।
भोला! नित्य बढ़ाय, शुद्ध मन सात्विक श्रद्धा

शिष्ट पुरुष संसारी होने से राजसी बुद्धि वाला था, फिर भी सत्संगी होने से उसकी बुद्धि विकसित होने लगी थी, संत के वचनों से संतुष्ट न होकर कहने लगा:-

शिष्टः- महाराज ! यह तो समझ में आगया कि सत्वगुण प्रधान श्रद्धा प्रकाशमय होने से आंख वाली तथा उपादेय है और रजो तमोगुण प्रधान श्रद्धा संसार रूप अन्धकार में गिराने वाली होने से अंधी और त्याज्य है। महाराज ! कृपा करके यह बताइये कि क्या बिना विचारे ही किसीकी बात मान ली जाय अथवा बिना विचारे ही श्रद्धा कर लेनी चाहिये। महाभारत में मैंने पढा है कि एक बार नारद जी ने दुर्योधन से कहा कि आज श्रीकृष्ण भगवान् सुई के नाके में से हाथी निकाल रहे थे। तो दुर्योधन ने विश्वास नहीं किया और यह जब ही बात युधिष्ठिर से कही गई तो उन्होंने तुरन्त मान ली, कुछ आश्चर्य नहीं किया, महाराज ! भला, बुद्धि कब मान सक्ती है कि सुई की नोक में से हाथी निकल जाय। क्या यह युधिष्ठिर की श्रद्धा अन्धी नहीं थी ? मैं तो समझता हूं कि अंधी ही थी ?

संतः- (हंस कर) बच्चा ! अंधी नहीं थी ? युधिष्ठिर गुणातीत कुशाग्र बुद्धि वाले थे, उनको सत्यासत्य का विवेक था, वे ईश्वर और माया दोनों के स्वरूप को भली प्रकार जानते थे, अन्धे के अन्धे दुर्योधन की बुद्धि अन्धी और विचारहीन थी, बिना विचारे ही उसने नारद जी की बात हंसी में उड़ादी। विचारहीन आगे पीछे का विचार नहीं करते, और कर भी नहीं सक्ते क्योंकि विचार करने का उनका औजार ही मोथरा है, सूक्ष्म और तीव्र बुद्धि ही विचार करने को समर्थ होती है ! युधिष्ठिर ने नारदजी को उत्तर देने से प्रथम यह विचार कर लिया था: 'सूई की नोक में से हाथी निकल जाना कौनसी बड़ी बात है ? वट के राई बराबर बीज में से इतना बड़ा वृक्ष निकल आता है कि जिसके नीचे छोटी मोटी सेना अथवा बरात ठहर सक्ती है। हमारी आंख के तिल में से ब्रह्मांडभर निकला चला जा रहा है ! स्वप्न में हमारा मन हाथी घोड़े आदि सृष्टि रच लेता है ! जाग्रत् में भी हमारी अणु समान बुद्धि में ब्रह्मांड भर का नकशा भरा रहता है। वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण और समस्त विद्यायें अणु रूप मन में से ही तो निकले हैं रजवीर्य रूप जल बिन्दु में से ब्रह्मा के समान बुद्धि वाले अनेक पुरुष होते हुये सुनने और देखने में आये हैं, फिर सुई की नोक में से हाथी निकलना कौन बड़ी बात है, ईश्वर की माया अपार है। माया में सब कुछ सामर्थ्य है ! बोल ! युधिष्ठिर का यह विचार सूझती बुद्धि का है या अंधी का ?

शिष्टः- (विचार करने के बाद प्रसन्न होकर) महाराज ! युधिष्ठिर की बुद्धि अवश्य अलौकिक थी, लौकिक बुद्धि ही अंधी होती है। महाराज ! आपका उत्तर सुन कर मुझे कुछ और पूछने का उत्साह हुआ है एक बार किसी सन्तने किसी वैश्यसे कह दिया था कि अमुक काल में खड़ी हुई बरछी पर कूद पड़ने से तुझे भगवान् के दर्शन हो जायंगे। यह बात मान कर वह जंगल में गया, वृक्ष के नीचे बरछी गाड़ दी, वृक्ष पर चढ़ गया परन्तु भय के कारण उससे कूदा न गया ! पास ही कोई क्षत्रिय खड़ा हुआ यह सब तमाशा देख रहा था, वैश्य के पास आकर सब वृत्तांत जान लिया और हज़ार रुपयेकी थैली वैश्यको देकर, वृक्ष पर चढ़ कर बरछी पर कूद पड़ा और भगवान् के दर्शन किये। महाराज ! इसमें क्या रहस्य है ? बुद्धि तो नहीं मानती कि इस प्रकार बरछी पर कूदने से भगवान् के दर्शन हो जांय।

संतः- ठीक है। संसार को ही सच मानने

वाली रजोगुणी बुद्धि ही नहीं मान सक्ती क्योंकि 'संसार के सिवाय और कुछ है ही नहीं' ऐसे निश्चय वाली बुद्धि को ईश्वर के होने न होने में ही शंका होती है वह शरीर के संयोग को अपना जीवन मानती है और शरीर के वियोग को अपना मरण समझती है, उस विचारी के लिये तो ईश्वर वंध्या-पुत्रके समान है फिर ऊपर की बात कैसे समझ जावे, आत्मानात्म के विवेक वाली कुशाग्र बुद्धि ही इस बात को समझ सक्ती है। वैश्य को देहासक्ति के कारण झिझकता और घबराता हुवा देख कर क्षत्रिय को बड़ा आश्चर्य हुआ, सब वृत्तांत सुन कर विचार करने लगा:- ओ हो! अज्ञान कैसा प्रबल है? अनित्य में नित्यता दिखाता है, दुःख में सुख बुद्धि कराता है, रक्त मांसादि का बना हुआ क्षण भंगुर शरीर आधिव्याधि, जरा मृत्यु आदि महा अनर्थ का कारण है, अज्ञान के वश मनुष्य इसको अपना आत्मा मानता है, इसके मरण से अपना मरण और उसके बने रहने से अपना जीवन मानता है, अनात्मा में आस्था करनी महा मूर्खता है। महात्मा ने ठीक तो कहा है कि देहासक्ति ही परमात्मा के दर्शन में आड़ है, परमात्मा सबका आत्मा है, सर्वत्र वर्तमान है, देहासक्ति के कारण दिखाई नहीं देता! भला! देहासक्त पुरुष को भगवान का दर्शन कैसे हो सक्ता है? मैंने तो युद्ध समाधि में भगवान के दर्शन किये हैं, यह देह ही आड़ है, यहही भगवान के दर्शन नहीं होने देती! आज निमित्त अच्छा मिल गया है, भोला भाला बनिया है, कंगाली से घबरा कर ईश्वर से मिलना चाहता है, मेरे पास थैली है ही इस गरीब का काम बन जायगा, देह नाशवान है, आत्म सुख में आड़ है, दुःखों का घर है इसको छोड़ कर आज सुखी हो जाऊं! लोक में भी हमेशा के लिये नाम हो जायगा! महात्मा का माहात्म्य भी प्रसिद्ध होगा, मरना जीना मायामात्र है, आत्मा तो अखंड आनन्द स्वरूप है, देह के कारण अखंड आनन्द स्वरूप आत्मा का भान नहीं होता! देह भार है, देह उपाधि है, देह अनर्थों का मूल है, देह ही संसार शूल है, देह को छोड़ कर अदेह, अखंड आनन्द स्वरूप हो कर सर्वदा के लिये स्वतंत्र हो जाना चाहिये! ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। किसी पुण्य से ऐसा निमित्त मिल गया है, हाथ से छोड़ना न चाहिये! इत्यादि विचार कर धीर क्षत्रिय वृक्ष पर से कूद कर संसार वृक्ष से मुक्त होकर संसार के अधिष्ठान भगवान को प्राप्त हो गया। बोल, बनिया की बुद्धि अंधी थी अथवा क्षत्रिय की?

शिष्टः महाराज! बनिये की बुद्धि ही अंधी थी. बनिये का ईश्वर तो धन ही है, धन्य है क्षत्रिय! बनिये को बनिये का ईश्वर देकर आप वस्तु रूप ईश्वर को प्राप्त हुआ! भला इसकी बुद्धि अन्धी कैसे हो सक्ती है? यह तो बड़ा दीर्घदर्शी था! दो कौड़ी के भस्म रूप देह से अमूल्य रत्न कमा कर लेगया! महाराज! सच है व्यवहार में फंसे हुये हम सरीखों की बुद्धि अन्धी होती है। महात्मा लोग बारम्बार भगवन्नाम का महात्म्य वर्णन करते हैं और हम लोग जानते भी हैं कि नामसे ही वस्तुयें जानने में आती हैं, ग्राम, के मनुष्य का नाम मालूम होता है तो तुरंत ही उसका पता लग जाता है, नाम मालूम नहीं होता तो पहिचाने हुये मनुष्य को भी नहीं ढूंढ सक्ते, इसी प्रकार भगवन्नाम से ही भगवत् प्राप्ति हो सक्ती है, ऐसा जान कर भी

हम महात्माओं के वाक्य पर विश्वास नहीं करते और बिना परिश्रम और बिना खर्च प्राप्त होने वाले सुख से वञ्चित रहते हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है। जैसे लोई कबीर जी के कहने से दिन में भी दीपक जला कर डरकी ढूंढने लगी थी, ऐसे ही आप संत महात्माओं पर अंध श्रद्धा करने वाले भक्त ही सूमती श्रद्धा वाले हैं। बाकी सब अपने को परम चतुर मानने वाले भी मूढ़ और अन्धी श्रद्धा वाले है। ऐसा मेरा निश्चय है। जो बालक अपनी चतुराई छोड़ कर माता पिता गुरु के कहे पर चलता है, वह बड़े होने पर अवश्य सुखी और चतुर बन जाता है और जो बालक माता पिता गुरु का कहा न मान कर अपनी मर्जी अनुसार बर्तता है, अवश्य कष्ट पाता है। अपने हितकर्ता की बात मानना ही सूमती श्रद्धा है। पेटसे कोई चतुर उत्पन्न नहीं होता, देर अथवा सवेर सब चतुराई यहीं सीखते हैं! ईश्वर कृपा बिना हिताहित समझ में नहीं आता परमात्मा सबको सुबुद्धि दे।

पाठक! उपरोक्त संवाद से श्रद्धा का स्वरूप आपकी समझ में आ गया होगा। श्रद्धा बुद्धि की वृत्ति है। बुद्धि का स्वरूप संत ने ऊपर बताया है, अब दूसरे प्रकार से बुद्धि का स्वरूप विचारते हैं। बुद्धि निश्चयात्मिका है यानी निश्चय रूप है। निश्चय दो प्रकार का होता है, एक यथार्थ निश्चय दूसरा अयथार्थ। यथार्थ निश्चय भी दो प्रकार का है एक आत्म दूसरा अनात्म। सच्चिदानन्द परब्रह्म को आत्मा जानना, यह यथार्थ आत्मनिश्चय है और अहंकार से लेकर देह को आत्मा जानना, यह यथार्थ अनात्म निश्चय है अयथार्थ निश्चय भी आत्म और अनात्म भेद से दो प्रकार का है। अहंकारादि को आत्मा मानना अयथार्थ आत्म निश्चय है और देह तथा जगत् को सत्य मानना, अयथार्थ अनात्म निश्चय है। तात्पर्य यह है कि आत्मा अनात्मा के विवेक वाली बुद्धि सूमती होती है और आत्मा अनात्माके विवेकसे रहित बुद्धि अंधी होती है। सत्संग से आत्मा अनात्मा का विवेक होता है। यानी सत्संग आखों का खोलने वाला है इसलिये सत्संग करने वाले सूमती श्रद्धा वाले हैं और शेष सब अंधी श्रद्धा वाले यानी भेड़ चाल वाले हैं।

कुंडली

जैसा करता सत्संग नर, तैसा चढता रंग
संत संग दे संत करि, करे असंत कुसंग॥
करे असंत कुसंग, संग दुर्जन तज दे रे।
करि निश दिन सत्संग, शुद्ध तन मन करलेरे
करि अंधों का संग, होय नर अंधा ऐसा।
भोला चढ़ता रंग, संग नर करता जैसा॥

मीरा गुण गान।

[ले० श्री० हरिकृष्णदास जी गुप्त]

राम राम रमायो रसीले रमते हिय में,
रोम रोम में प्रीति की भभूत रमाई है।
भक्ति भाव सौं भरपूर कियो भ्रष्ट मनको,
भेद भावना की बिन्दी भालसौं मिटाई है॥
सुन्दर तन लगायो साधु संतन सेवा में,
संसार बिच सत्संग की सोभा बढ़ाई है।
'हरि हरि-भक्ति में रतहो भव भयहरयो,
धन्य २ चित्तौड़ की रानी मीरा बाई है॥

भजन

१

बांके बिहारी को हमरो प्रणाम ॥ टेक ॥
मोर मुकुट माथे तिलक विराजे,
कुण्डल अलकां कारी को ॥ १ ॥
अधर मधुर धर बंसरी बजावे,
रीझ रिझावे राधा प्यारी को ॥ २ ॥
यह छवि देख मगन भई मीरां,
मोहन गिरवर धारी को ॥ ३ ॥

२

दोहा-माला मन से लड़ पड़ी क्या फेरे तू मोय ।
जो तेरे मन में सांच है राम मिलादूं तोय ॥
काहे को बिसारीरे जपा कर माला ॥ टेक ॥
राम भजन को तुलसी की माला,
ओढन को मृग छाला ॥ १ ॥
खान पान को बासी जो टुकड़ा,
रहने को कुञ्ज तमाला ॥ २ ॥
धन जोबन मदमें मत भूले,
जम करैं हैं बेहाला ॥ ३ ॥
निश दिन रट हरि नाम छिनहि छिन,
रहो प्रेम मत वाला ॥ ४ ॥
कृष्ण पिया बिन हितु न जग में,
सब झूंठा जंजाला ॥ ५ ॥

३

काहे रे बन खोजन जाई ॥ टेक ॥
सर्व निवासी सदा अलेपा, तूही संग समाई ॥ १ ॥
पुष्प मध्य जो बास बसत है, मुकुर मांहि जस छाई॥
तैसे हि हरि बसत निरन्तर घट ही खोजो भाई ॥२॥
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई ॥ ४॥
जन नानक बिन आप चीन्हें मिटे न भ्रम की काई ॥ ५

४

अब मैं कौन उपाय करूं ॥ टेक ॥
जे विधि मन को संशय छूटे, भवनिधि पार तरूं ॥
जनम पाय कछु भलो न कीन्हों ताते अधिक डरूं ॥
गुरु मत सुन कछु भलो न उपज्यो, पशुवत उदर भरूं
कहे नानक कछु बिरद पिछानो, तब हौं पतित तरौं॥

५

यह मन नेक कह्यो न करै ॥ टेक ॥
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुर्मति ते न टरे ।१।
मद माया बश भयो बावरो, हरि जस नहिं उचरे ।२
करि परपंच जगत के देह से, अपनो उदर भरे ॥३॥
स्वान पूंछ ज्यों होय न सूधो, कह्यो न कान धरे ॥४
कहु नानक भज राम नाम नित, जातैं काज सरे ॥५

६

अब तो प्रगट भई जग जानी ॥ टेक ॥
वा मोहन सौं प्रीति निरन्तर, अब न रहेगी छानी ॥
कहा कहूं सुन्दर मूरति इन, नैनन माहिं समानी ॥२
निकसत नाहिं पच पच हारी, रोम रोम अरझानी ॥
अब कैसे निरवारि जात है, मिले दूध ज्यों पानी ॥४
सूरदास प्रभु अन्तर्यामी, उर अन्तर की जानी ॥५॥

७

नर हरि चंचल हैं मति मेरी ।
कैसे भगति करूं मैं तेरी ॥ टेक ॥
तू मोय देखे हौं तोय देखूं, प्रीति परस्पर होई ।
तू मोहि देखे तोय न देखूं, यह मति सब बुध खोई
सब घट अन्तर रमसि निरन्तर, मैं देखन नहिं जाना
गुण सब तोर मोर सब अवगुण, कृत उपकार न माना

मैं तैं तोर मोर असमझसों कैसे करि निस्तारा।
कहै रहदास कृष्ण करुणामय, जय जय जगत् अधारा

८

राम मैं नहीं तोरूं जो तुम तोरो।
तुम सौं तोर कवन सौं जोरौं ॥ टेक ॥
जहां जहां जाऊं तुमरी पूजा,
तुमसा देव और नहिं दूजा ॥ २॥
मैं अपनो मन हरि सौं जोर्यो,
हरि सौं जोर सबन से तोर्यो ॥३
तीरथ व्रत न करूं अंदेसा,
तुमरे चरण कमल का भरोसा ॥१॥
सबहि पहर तुम्हारी आशा,
मन क्रम वचन कहे रहदासा ॥ ४॥

९

राम रट लागी लागो अब कैसे छूटे ॥ टेक ॥
प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा जैसे चितवत चन्द्र चकोरा
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोत जरै दिन राती
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने हि मिलत सुहागा
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करे रहदासा

१०

सांची प्रीति हम तुम संग जोड़ी।
तुम संग जोड़ और संग तोड़ी ॥ टेक ॥
जो तुम बादर तो हम मोरा,
जो तुम चन्द्र हम भई चकोरा ॥१ ॥
जो तुम दीवा तो हम बाती,
जो तुम तीरथ तो हम जाती ॥ २ ॥
जहां जहां जाऊं तहां तुम्हरी सेवा,
तुम सौं ठाकर और न देवा ॥ ३ ॥
तुमरे भजन कटे यम फांसा,
भक्ति हेतु गावे रहदासा ॥ ४ ॥

११

साधो यह तन मिथ्या जानो ॥ टेक ॥
या भीतर जो राम बसत है, सांचो ताहि पिछानो ॥
यह जग है सम्पत सुपने की, देखें कहा ऐड़ानो ॥१ ॥
संग तिहारे कछु न चाले, ताहि कहा लपटानो ॥ ३॥
स्तुति निन्दा दोऊ परि हरि, हरि कीरति उर आनो
जन नानक सब ही में पूरण, एक पुरुष भगवानो ।५

१२

जपोरे मन मूल मन्त्र ओंकार ॥ टेक ॥
ओंकार ते बेद प्रगट भये, विद्या का भण्डार ॥ १ ॥
ओंकार को ध्यान धरे जो, हो जावे भव से पार ॥२
वेद के आदि अन्त और मध्य में, ऋषि करें उच्चार
चारों वेद पुराण अठारह, सर्व शास्त्र का सार ॥४॥
निरंकार और ज्योती स्वरूपा, आपमें आप निहार ५

१३

दोऊ कर जोर चरण शिर नाऊं ॥ टेक ॥
तुमरे बिन मेरा नहि कोई,
तुम्हें छोड कर और कहां जाऊं ॥ १॥
तोरो ही ध्यान रहे मेरे दिल में,
तेरो ही गुण गाऊं ॥ २ ॥
दीना नाथ पतित पावन प्रभु,
कौन भान्ति मैं तुम्हें रिझाऊं ॥ ३ ॥
तन मन धन सब तुमरे दीये,
तुम्हरी ही भेंट चढ़ाऊं ॥ ४ ॥
ऐसी शक्ति देवो दया मय,
तुमको कभी न भुलाऊं ॥ ५ ॥

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
ले० क० सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी, अमृतसर	१११)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	,,
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	,,
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल	,,
बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना	,,
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	,,
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	,,
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	,,
पं० गोपीनाथ जी [बिहारी निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बरफूमल गली परांवठा दिल्ली	,,
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	,,
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	,,
चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी	,,
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	,,
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	,,
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	,,
लक्ष्मी देवी खोसला धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	,,
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	,,
श्रीमती भक्ताणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी ,,	,,
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	२५)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मक्खी चणडूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेवेन्यू मेम्बर ग्वालियर	५१)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावा	२५)
सेठ सागरमल जी सेखावतिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	२५)
ऐस० जे० राव पंवार होम मेम्बर ग्वालियर स्टेट ,,	,,
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली	२५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर	२५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर	२५)
पी० एल० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर	२५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी	२५)
सरदार जगरामसिंह जी कोसली	२५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी
बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी
रामप्रसाद जी माड़सा
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी।
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़।
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहाबाद बैंक देहली।
ला० देवकीनन्द जी फिरोजपुर
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता
राय साहब बांकेविहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी
ला० रामचन्द्र जी वैद्य ,,
राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी
बा० शिवरामसिंह जी ,,
जमादार दीपचन्द जी ,,
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल
ला० ओंकारमल जी कानपुर
चौ० गणपतसिंह जी यादव पटौकड़ा परगना नारनौल
चौ० मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास, रेवाड़ी
ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली
भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, ,,
चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी
प० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गांवां
श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल
ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली
चौ० मूलचन्दजी गुराबड़ा जि० गुड़गांवां
बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ
ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी
सुमित्रादेवी ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी पन्ना का दरीबा जैपुर
माई गुलाबोदेवी दिल्ली

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, करना, न घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९ पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ	विषय	लेखक	पृष्ठ
१. भगवद्वचन		२६५	८. गौवंश के उपकार [ले० श्री० गंगाप्रसाद जी अग्नि होत्री		२८६
२. श्रीचैतन्य महाप्रभु		२६७	९. निष्काम भक्ति [ले० श्रीमती सावित्रीदेवी		२८९
३. पुण्य स्मृति कविता [ले० श्री० रमाशंकर मिश्र लखनऊ		२७२	१०. श्रद्धा अन्धी है या सूझती [ले० श्री० भोले बाबा		२९०
४. भगवद्भक्ति [ले० श्रीभोले बाबा अनूपशहर		७२३	११. मीरां गुणगान [ले० श्री० हरिकृष्णदास जी गुप्त		२९५
५. भक्त की भावना (कवित) [ले० श्री० शोभाराम धेनुसेवक		२८१	१२. भजन		२९६
६. सत्य का स्वरूप [सम्पादक		२८२			
७. भगवद्भक्त राजा उपरिचर [सम्पादक		२८४			

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित		मूल्य	॥≈)
२.	सारसंग्रह	... ...	,,	≈)
३.	शब्दसंग्रह	... ...	,,	⅁॥
४.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त	...	,,	।⅁
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	... ...	,,	⅁।
६.	वेदोपनिषत्	... ...	,,	।⅁
७	ज्ञानधर्मोपदेश	... ...	,,	⅁॥।
८.	भाषा फक्किका प्रकाश	... ...	,,	॥)
९.	भक्ति योग संग्रह	... ...	,,	≈)॥
१०.	शब्द संग्रह गुटका	... ...	,,	।)
११.	शब्द सदाचार संग्रह	... ...	,,	⅁।

मिलने का पताः—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।